हारूँगी नहीं
'निर्गुण'

हारूँगी नहीं

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

हारूँगा नहीं

HAROONGI NAHIN

STORIES

by

DWIJENDRA NATH MISHRA 'NIRGUN'

FIRST EDITION : 1969

मूल्य

सजिल्द : चार रुपये, पचास पैसे

अजिल्द : तीन रुपये, पचास पैसे

प्रथम संस्करण : १९६९

प्रकाशक	मुद्रक
अनुराग प्रकाशन	आनन्दकानन प्रेस
विशालाक्षी भवन, चौक	सीके० ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी–१	वाराणसी–१

'निर्गुण' की कहानियाँ

मेरे समक्ष हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कहानीकार श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' का यह मर्मस्पर्शी कहानी-संग्रह 'हारूँगी नहीं' है। श्री निर्गुण की कहानियाँ तीसेक वर्षों से अधिक से पाठकों का हृदय द्रवित कर रही हैं। वे प्रेमचन्द युग की सहजता को गहरी मानवीयता के साथ जोड़ने वाले कहानीकारों के अग्रणी हैं। नयी कहानी या अकहानी के मानदण्डों पर श्री निर्गुण की कहानियाँ कदाचित् कुछ लोगों को अयथार्थ और रूमानी लगें, पर कथा की सच्ची कसौटी हृदय में राग उत्पन्न करना है—राग मनुष्य के अन्तस्तल में घटित होने वाले प्रत्येक व्यापार के साथ, मनुष्य की हजार-हजार दुर्बलताओं के बीच से उभरने वाली उसकी मानवीयता के साथ, मानवीय परिस्थितियों के ऊपर विजय प्राप्त करने वाली मनुष्य की उदार दृष्टि के साथ तथा सामान्य जीवन की अद्वितीयता के साथ। कथा की इस कसौटी पर श्री निर्गुण की कहानियाँ निश्चय ही खरी उतरती हैं।

यह सही है कि निर्गुण जी यथार्थ की कड़वी घूँट भी बड़ी तृप्ति से पीने वाले हैं और इसीलिए उनके पात्र शरच्चन्द्र के पात्रों की तरह असम्भव प्रतीत होते हुए भी अजनबी नहीं लगते। प्रस्तुत संग्रह में 'छोटा डाक्टर' कहानी का शर्मा, 'लाजवन्ती' की मनोरमा, 'आर्टिस्ट' का सीताराम, और 'साबुन' कहानी की श्यामा ऐसे ही अद्वितीय पात्र हैं। निर्गुण जी वातावरण को रँगने में विश्वास नहीं करते। इसीलिए न तो वे प्रकृति के चित्र प्रस्तुत करते हैं और न आस-पास के वर्णन ही। उनकी भाषा बहुत ही संक्षिप्त, सहज, निर्व्याज और भावगर्भ है। मुहावरे का बाँकपन, अलंकृत योजना और प्रतीकात्मकता के लोभ में वे कभी नहीं पड़ते। उनकी भाषा का जादू, बोलचाल की

भाषा से उनके विलग न होने में ही निहित है। उनकी शिल्प-विधि का प्राण स्वभावोक्ति है, पर यह स्वभावोक्ति भी अतिरञ्जित नहीं है। निर्गुण यद्यपि मूलतः मन के आवेगों के ही चितेरे हैं, पर उनकी शैली मनोविश्लेषण की ग्रन्थि-लताओं से एकदम मुक्त है। वे भावों के चढ़ाव-उतार को कम से कम शब्दों में, कम से कम अनुभावों के प्रदर्शन के द्वारा कम से कम भावोच्छलता के प्रवाह में अपने को ढाल कर व्यक्त करते हैं और इसीलिए मानवीय संवेदना को जगाने में उनकी कहानियाँ इतनी प्रभावकारी होती हैं।

निर्गुण मानवीय मूल्यबोध के प्रति सर्वात्मभाव से अर्पित हैं; इसीलिए वे त्याग और उदारता की अपरिमित शक्ति में दृढ़ निष्ठा रखते हैं। इन गुणों में वे समस्त अवगुणों के प्रक्षालन की क्षमता देखते हैं। वे मानवीय दुर्बलताओं को कभी भी ढँकने की कोशिश नहीं करते, पर दुर्बल चित्त के भी मानवीय संस्कार को इस तरह से उभारते हैं कि दुर्बलता उस संस्कार के लिए साधक बन जाती है। 'छोटा डाक्टर' कहानी का शर्मा उलटी-पुलटी दवा देता है, समाज के मोटे मक्खीचूसों से रुपया भी ऐंठता है, पर वास्तविक दुःख-दारिद्र्य में वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। वह एक औघड़ दानी है। इसी-लिए वह इतना सहज और मानवीय है। 'आर्टिस्ट' का सीताराम एक ओर अपनी जीविका की रक्षा के लिए गुण्डों की सहायता से अपने प्रतिस्पर्धी को उखाड़ना चाहता है, दूसरी ओर निरन्तर चोरी-चोरी उसे बचने की चेतावनी भी देता रहता है। इस प्रकार जिजीविषा और कलाकार की कोमल संवेदना में जो द्वन्द्व छिड़ता है, उसमें संवेदना ही विजय प्राप्त करके रहती है। 'अप्रत्याशित' कहानी में एक ही घटना को दो विपरीत पहलुओं से देखा गया है और 'मनुष्य स्वभाव से नीच होता है' इस निराशावादी धारणा का बहुत ही सहज ढंग से प्रतीकार किया गया है। 'हारूँगी नहीं' वात्सल्य और सतीत्व के संघर्ष

की कहानी है और सतीत्व की करुण विजय में इसका पर्यवसान होता है। ये सभी कहानियाँ असम्भव लगती हैं, पर इनकी सचाई हृदय को छुए बिना नहीं रहती। इसका कारण लेखक का रूमानी आग्रह होगा, यह मानने के लिए मैं तैयार नहीं। वस्तुतः मानवीय मूल्यों के प्रति उसकी निष्ठा ही इन कहानियों को द्रवित करने का ऐसा ताप देती है।

निर्गुण छिछले प्रेम की कहानियाँ नहीं लिखते और एकनिष्ठ दाम्पत्य प्रेम तक ही उनकी परिधि सीमित नहीं रहती। वे वात्सल्य और शुद्ध आत्म-दान-परक विराट मानवीय प्रेम के क्षेत्र को अपना विषय बनाते हैं तथा अनपढ़, जाहिल और ईर्ष्यालु स्वभावों में भी ऊँचे उठने की आकांक्षाएँ तलाशते रहते हैं। 'हनुमान' और 'बेटी' जैसी कहानियाँ इसी दुर्निवार खोज की कहानियाँ हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन कहानियों का धरातल मूल्यवत्ता की अपनी ऊँचाई से जितना प्रभावित करेगा उससे भी अधिक संवेदना की गहराई से।

वाराणसी,
मार्गशीर्ष शुक्ल, २०२६

—विद्यानिवास मिश्र

अनुक्रम

साबुन

सुखदेव ने जोर से चिल्ला कर पूछा—"मेरा साबुन कहाँ है ?"

श्यामा दूसरे कमरे में थी। साबुनदानी हाथ में लिये लपकी आयी, और देवर के पास खड़ी होकर, हौले से बोली—"यह लो।"

सुखदेव ने एक बार अँगुली से साबुन को छूकर देखा और भवें चढ़ाकर पूछा—"तुमने लगाया था, क्यों ?"

श्यामा हौले से बोली—"जरा मुँह पर लगाया था।"

"क्यों तुमने मेरा साबुन लिया ? तुमसे हजार बार मना कर चुका हूँ। लेकिन तुम तो बेहया हो न !"

"गाली मत दो ! समझे !"

श्यामा ने डिब्बी वहीं जमीन पर पटक दी, और तेज कदमों से बाहर जाती-जाती बोली—"जरा साबुन छू लिया मैंने, तो मानो गजब हो गया !" फिर दूसरे कमरे की चौखट पर मुड़ कर बोली—"मैं क्या चमार हूँ ?"

सुखदेव ने वहीं से चिल्ला कर कहा—"हाँ हो चमार ! तुम चमार हो ! खबरदार, जो अब कभी मेरा साबुन छुआ !"

अँगीठी पर तरकारी पक रही थी। श्यामा भुन-भुन करती, ढक्कन हटाकर, करछुल से उसे लौट-पौट करने लगी, तो देखा कि तरकारी आधी से ज्यादा जल गयी है। उसने कढ़ाही उठा कर नीचे जमीन पर पटक दी।

"खाक हो गयी नासपीटी !" तरकारी को निहारती नाराज होकर बोली :

तभी उधर ठन्न से लोटा गिरने की आवाज हुई। श्यामा ने चौंक कर देखा, बड़ा लड़का बाल्टी खींच कर बाहर लिये जा रहा था। चिल्लाकर कहा—"कहाँ लिये जा रहा है, अभागे ?"

"नहायेंगे", लड़का शान्तभाव से जमीन पर बाल्टी घसीटता बोला—"चाचा जी ने कहा है।"

"चाचा जी के बच्चे ! गू-मूतों में डाल दो बाल्टी !"

उसने लड़के के हाथ से बाल्टी छीन ली और पैरों से धमधम करती गुसलखाने के आगे तक आयी।

सुखदेव छोटे भतीजे को सामने बिठाकर उसके सिर पर साबुन मल रहा था। भाभी को देख कर बोला—"काला कर दिया साबुन। चेहरे का रंग लग गया इसमें काली माई के !"

श्यामा ने चिल्ला कर पूछा—"मैं काली हूँ ?"

सुखदेव न बोला। बच्चे के सिर पर साबुन मलता रहा।

श्यामा ने बाल्टी वहीं पटक दी और चढ़े स्वर में पूछा—"मैं काली हूँ ? मैं काली माई हूँ ?"

सुखदेव ने घबरा कर कहा—"धीरे बोलो। भाई साहब आ गये।"

श्यामा ने चौंक कर उधर देखा। कमरे के दरवाजे पर पति के जूते चमक रहे थे।....

ऊपर जो किरायेदार रहते थे, उनके यहाँ बड़ी क्लाक घड़ी थी। टन् करके आधा घंटा बजा, तो उसने जल्दी-जल्दी हाथ चलाये। फिर थाली परोस कर पति को आवाज दी—"आओ।"

ब्रजलाल ने आसन पर बैठ कर भोजन पर एक नजर डाली और पूछा—"आज तरकारी नहीं बनी ?"

"नहीं।"

"यह प्याली में क्या है ?"

"कदुआ है। लल्ला के लिए रख दिया है। दाल से खाओ।"

पति ने आज्ञा मान कर, एक ग्रास मुख में दिया और शान्तभाव से बोले—"नमक लाओ।"

"क्या कम है ?"—श्यामा ने नमक की बुकनी थाली में छोड़ते हुए पूछा।

"बिलकुल नहीं है।"

"क्यों झूठ बोलते हो ? मैंने नमक डाला था। शर्त लगाती हूँ।"

पति ने हँस कर कहा—"यही सही। लेकिन अपनी कुशल चाहो, तो पतीली में नमक पीस कर डाल दो। सुखदेव अभी खाने बैठेगा, तो फिर आफत आ जायेगी तुम्हारी।"

श्यामा ने स्वर को चढ़ा कर कहा—"क्या आफत आयेगी ? फाँसी दे देंगे मुझे ? मैं दासी हूँ न सब की !"

ब्रजलाल ने हँस कर कहा—"तुम राजरानी हो। लाओ, रोटी तो दो।"....

वे कपड़े पहन कर आफिस जाने को तैयार हुए, तो श्यामा ने चौखट पकड़े-पकड़े कहा—"मुझे साबुन चाहिए।"

"साबुन !"—पति ने अचरज से कहा—"कैसा साबुन ? सुखदेव से कहो। छाता लाओ। वह फाइल उठाना।"

तभी रसोईघर से एक पुकार आयी—"भाभी, खाना परोसो।"

बड़ा लड़का अलग थाली में खाता है। छोटा अपने चाचा जी के हाथ से खाता है। तीनों पास-पास, नहाये-धोये, आसनों पर बिराजे भोजन कर रहे थे।

बड़े लड़के ने मुँह बिचका कर कहा—"दाल में इत्ता नमक है कि पूछो मत !"

श्यामा ने डरते-डरते देवर की ओर देखा। पर सुखदेव ने नमक के बारे में कुछ शिकायत न की, उलटे भतीजे को डाँट कर बोला—"खाओ

चुपचाप !" फिर भाभी के आगे प्याली सरका कर बोला—"तरकारी और देना, भाभी !"

"भाभी ने हँस कर कहा—"तरकारी अब नहीं है ।"

"सब खतम ?"

"यह देखो", कढ़ाही आगे खींच कर हँस कर कहा—"जल गयी सब । यही इतनी बची थी, सो तुम्हारे लिए छाँट कर निकाल ली थी ।"

"देखें, जली हुई का स्वाद देखें ।"

श्यामा ने कढ़ाही पीछे को करके कहा—"यह तुम्हारे खाने के काबिल नहीं है । लो, दाल और ले लो ।"

बड़े लड़के ने कहा—"मैं भी दाल और लूँगा ।"

श्यामा ने पतीली उसके आगे सरका कर कहा—"ले, दाल ले ।"

लड़का पतीली में झाँक कर बोला—"कहाँ है इसमें दाल ?"

"दाल नहीं है । अब तू मेरा सिर खा ले, पेटू !"....

छोटे भतीजे के हाथ धोकर, सुखदेव कालेज के कपड़े पहनने लगा तो कमीज में एक ही बटन बचा पाया ।

सुई-डोरा और बटन हाथ में लिये, भाभी के आगे आ खड़ा हुआ । श्यामा थाली परोस कर खाना शुरू ही कर रही थी । सुखदेव ने कमीज उसकी गोद में रख कर कहा—"जल्दी, भाभी जल्दी !"

भाभी जल्दी-जल्दी बटन टाँकने लगीं । तब सुखदेव की नजर भाभी के परोसे हुए भोजन पर गयी । तरकारी, जो जल कर काली हो गयी थी, अकेली-अकेली थाली में सजी थी ।

तभी भाभी ने कमीज ऊपर को करके कहा—"लो, थामो । अब मुझे भी पेट में कुछ डाल लेने दो ।"....

बड़ा भतीजा बाहर दरवाजे पर खड़ा था । उसके स्कूल की आज

छुट्टी थी। कालेज जाने लगा, तो सुखदेव उसका हाथ पकड़ कर खींचता हुआ ले गया जल्दी-जल्दी बड़ी दूर तक।

चार मिनट बाद लड़के ने दही का कुल्हड़ माँ के आगे ला धरा।

श्यामा उसी जली तरकारी से रोटी खाये जा रही थी। दही देख कर अचरज से पूछा—"कहाँ से ले आया, रे ?"

लड़का बाहर को भागता-भागता बोला—"चाचा जी ने दिया है।"

(२)

पड़ोस में रहने वाली पंजाबिन बच्चों के कपड़े बहुत सस्ते सींती थी। उसके आदमी को श्यामा ने पति से आग्रह कर-करके, उन्हीं के आफिस में लगवा दिया था। सुखदेव अपने सब कपड़े जे. बी. दत्ता कम्पनी में सिलवाता था। बच्चों की कमीजें भी पिछली बार उसने वहीं सिलवाईं। वे सब कमीजें पहनने पर बच्चों को छोटी हुईं, और सिलाई लगी इतनी। देवर-भाभी में एक द्वन्द्व हो गया। फलतः इस बार बच्चों की कमीजें पंजाबिन को दीं श्यामा ने। सिलाई ऐसी सुघड़ हुई की देख कर दिल खुश हो गया। खुश होकर, उसके आगे एक रुपया धरा और हँस कर बोली—"अबकी बार मुन्ना के बाबू की कमीजें भी तुम्हीं से सिलवाऊँगी, बहिन !"

"जरूर-जरूर, बहिन जी ! मुझीसे सिलवाना बावूजी की कमीजें। यह रुपया रख लो, बहिन जी, यह रुपया रख लो।"

श्यामा ने कहा—"नहीं बहिन, सिलाई तो तुम्हें लेनी ही होगी।"

पंजाबिन बोली—"मुझ पर जुल्म न करो, बहिन जी !" आँखों में आँसू भर कर बोली—"जुल्म न करो मुझ पर। मुझे इतना जुदा न करो, रानी जी ! मुन्ना क्या मेरा बेटा नहीं है ? तुम्हें मेरे सिर की कसम, बहिन जी, यह रुपया उठा लो।"....

वही एक रुपया श्यामा के पास था और उसी रुपये को लिये-लिये सारे दिन घूमती रही कि आज साबुन मँगा कर छोड़ूँगी। पर ऐसी

तकदीर फिरी कि कोई न मिला साबुन लाने वाला। तब खीझ कर, बड़े को समझा-बुझा कर, गली के मोड़ वाली दूकान पर भेजा साबुन लाने और सन्तोष की साँस ले कर, मन-ही-मन बोली कि 'सुबह अपनी नयी टिकिया से जब नहाऊँगी, तो देखूँगी ! रोज लगाऊँगी साबुन।'

पर लड़के की अक्ल पर पत्थर पड़ गये। दो आने का कपड़े धोने का बदबूदार साबुन और चौदह आने पैसे माँ के सामने रख कर भाग गया।

श्यामा ने वह दो आने का साबुन उठा कर, कोने में फेंक दिया और लड़के को कोसती हुई रसोई बनाने लगी।

····आध घण्टा बाद पति आ पहुँचे और उसके आध घण्टा बाद देवर। खाना तैयार हो चुका था। पति के कोई मित्र आ गये थे और बातों की झड़ी लगाये हुए थे। श्यामा दस बार उस कमरे के दरवाजे पर झाँक कर लौट आयी और दो बार लड़के को भी बाप के पास भेजा। ब्रजलाल ने कहा—"आते हैं।" पर वह बातूनी भला आदमी न उठा, न उठा।

हार कर श्यामा ने देवर से कहा—"लल्ला, तुम तो खाओ। वे तो आज बातों से ही पेट भरेंगे।"

सुखदेव ने हौले से कहा—"कहो तो मैं जाऊँ और उनसे हाथ जोड़ कर कहूँ, 'अब तशरीफ ले जाइये, श्रीमान्।"

श्यामा ने हँस कर कहा—"गोली मारो श्रीमान् को। लो, मैंने थाली परोस दी।"

सुखदेव ने चारों ओर नजर दौड़ा कर पूछा—"बच्चे कहाँ हैं ?"

श्यामा हँस कर बोली—"चाचा की ससुराल गये हैं। प्रियम्वदा का नौकर आया था। उनके यहाँ आज कथा है। तुम नहीं जाओगे ?"

"बको मत !" सुखदेव ने जल्दी से कौर मुँह में देकर कहा—"पानी दो गिलास में।"····

ऊपर पानी बन्द हो गया था। ऊपर वाली सेठानी यहाँ बाल्टी लगाये खड़ी थीं। हँस कर बोलीं—"म्हाने भर लेने दो, जी !"

श्यामा पानी लेकर लौटी, तो सुखदेव खा चुका था। अचरज से बोली—"खा चुके ? दो परावँठों से ही पेट भर गया !"

पर सुखदेव ने जल्दी-जल्दी पानी पिया और जल्दी-जल्दी कमीज पहन कर पैरों में चप्पलें डाल कर खड़ा हो गया रसोईघर के सामने।

श्यामा जूठी थाली लेकर बाहर निकली और उसे यों खड़ा देखा, तो रुक गयी।

सुखदेव ने हौले से कहा—"भाभी !"

भाभी हौले से बोलीं—"क्यों, क्या है ?"

"भाभी, आज बहुत अच्छी फिल्म आयी है।"

"तुम जा रहे हो ?"

"पैसे नहीं हैं !"

भाभी ने सोचकर कहा—"चौदह आने से काम चल जायेगा ? चौदह आने हैं मेरे पास।"

"लाओ, लाओ !"

श्यामा ने थाली वहीं रख दी और दौड़ी जाकर बक्से में से चौदह आने निकाल लायी और देवर की जेब में वे चौदह आने डाल कर हौले से बोली—"वह उधर वाली साँकल खटखटाना। मैं जागती रहूँगी।"

सुखदेव ने हौले से कहा—"अच्छा। भाई साहब पूछेंगे, तो क्या कहोगी ?"

श्यामा ने हौले से कहा—"कह दूँगी कि प्रोफेसर शर्मा के यहाँ गये हैं !"

सुखदेव ने प्रसन्न होकर कहा—"बस-बस, यही कह देना।" और दरवाजे की ओर दबे पाँव बढ़ा और चौखट के पार हो गया। फिर किवाड़ों पर मुँह रखकर हौले से पुकारा—"भाभी !"

भाभी लपक कर आगे आयीं। हौले से बोलीं—"हाँ।"

सुखदेव ने हौले से कहा—"नमस्ते!"

तभी ब्रजपाल ने पीछे से आवाज दी—"खाना परोसो!"....

प्रियम्वदा से सुखदेव का परिचय था। दो साल पहले वह एक लड़की को पढ़ाने जाता था। वहीं अपनी शिष्या की सहेली के रूप में प्रथम साक्षात्कार हुआ था। फिर वह परिचय प्रगाढ़ होकर जब रूप बदलने लगा और स्नेह की वर्षा होने लगी दोनों ओर से तो भाग्यदेवता बहुत हँसे। किसी को कानों-कान खबर न हुई और स्नेह का रंग प्रणय में परिणत हो गया। उस लड़की की पढ़ाई बन्द हो गयी और उपाय न पाकर, कागज के टुकड़ों पर मन के अन्तराल की बातें अंकित होकर आने-जाने लगीं। भाग्य के देवता हँसते रहे!....

श्यामा एक दिन धोबी को मैले कपड़े दे रही थी। जेबें खाली करके देवर का कोट डालने लगी धोबी के आगे, तो उसमें एक पत्र पाया, जिसमें लिखा था—"प्राणों के स्वामी, हृदयेश्वर...."

खूब खुश हुई वह और सुखदेव को खूब डराया-धमकाया। तुच्छ-सा हो गया वह भाभी के आगे। सिर झुका लिया और बार-बार उस चिट्ठी को लौटाने की जिद करने लगा। श्यामा ने हँसी रोक कर कहा—"नहीं, यह चिट्ठी तुम्हें नहीं, तुम्हारे भैया को दूँगी। जरा आटे-दाल का भाव मालूम हो तुम्हें!"

सुखदेव से और कुछ बन न पड़ा। भाभी के पैरों पर अपना सिर रख कर रोने लगा। ऐसा कायर निकला प्रेमी!....

उसी दिन से भाभी 'नर्म-सचिव' हो गयीं। उन्हीं की सलाह से सब काम होने लगा। एक दिन नुमाइश में दूर से प्रियम्वदा के दर्शन भी करा दिये भाभी को। घर लौटने लगे, तो राह में भाभी चलती-चलती बोलीं—"हे भगवान्, यही तुम्हारी प्रियम्वदा है! रूप की जोत लिये सारी नुमाइश को चकाचौंध किये थी। हाय राम, मैं तो उसके

पैरों का धोवन भी नहीं हूँ। कैसे उसकी जिठानी बन पाऊँगी ? मुझे 'जीजी' कहते भी वह घिनायेगी, मुझे देख कर हँसेगी।"

सुखदेव सुन कर हौले से बोला—"गला काट लूँगा।"

भाभी बोलीं—"किसका गला काट लोगे ? मेरा ?"

पर सुखदेव और कुछ न बोला।

दूसरे दिन प्रियम्वदा का नौकर श्यामा को एक छोटी-सी 'पाती' दे गया, जिसमें 'जीजी' के चरण कमलों में 'दासी' प्रियम्वदा के प्रणाम की बात लिखी थी और लिखा था कि 'अभागिन से ऐसा क्या अपराध हो गया, जो इतने निकट आकर भी राजराजेश्वरी माता बिना दर्शन दिये चली गयीं ? एक बार चरणों की रज अपने माथे पर लगा लेती। जीवन कृतार्थ कर लेती अपना'....

पर राजराजेश्वरी का यहाँ यह हाल था कि तन पर कभी पूरे कपड़े भी नहीं हो पाते थे।

ठण्ड पड़ने लगी और सुबह तड़के-तड़के नहाकर रसोई चढ़ाते जब श्यामा को कँपकँपी लगने लगी, तो उसने याद करके देवर का बक्स खोल कर वह पुराना स्वेटर निकाल लिया, जिसे कीड़ों ने जगह-जगह काट कर तरह-तरह के वातायन और गवाक्ष बना दिये थे हवा के आने-जाने के लिए।

उसी स्वेटर को रोज सुबह पहन लेती और गर्मी पाकर कहती कि "चलो, अच्छा है। यह जाड़ा मजे में काट देगा।"....

रात को सिनेमा देखा सुखदेव ने और सूरज चढ़े तक गहरी नींद ली। फिर भी देह का आलस्य न गया। एक जम्हाई लेकर छोटे भतीजे से बोला—"चलो बेटा, चाय पी आयें।"

लड़का कूद कर बोला—"चाचाजी, बिस्कुट भी खायेंगे न ?"

सहसा सुखदेव को याद आया कि चाय वाले के नौकर को उसने अपना स्वेटर देने का वायदा किया था। वह बक्स खोल कर पुराना

स्वेटर खोजने लगा। पर स्वेटर न मिला। एक-एक करके सारे कपड़े बाहर निकाल कर फेंक दिये। पर स्वेटर के दर्शन न हुए। कहाँ गया ?

भाभी रसोईघर में बैठी, दाल बीन रही थीं। उनसे आकर पूछा—"मेरा स्वेटर था एक पुराना।"

"मैंने ले लिया है।"

"तुमने कैसे ले लिया ?"—सुखदेव ने माथे पर बल डाल कर कहा—"तुमने क्यों मेरा बक्स खोला ? क्यों ले लिया मेरा स्वेटर ?"

भाभी ने शान्त स्वर में कहा—"बेकार पड़ा था, इसलिए निकाल लिया।"

सुखदेव ने स्वर को तीव्र करके कहा—"मुझसे बिना पूछे तुमने कैसे ले लिया ? तुम मेरी चीजें क्यों छूती हो ?"

भाभी सुन कर चुप रहीं।

सुखदेव ने उसी स्वर में कहा—"कहाँ है स्वेटर ? लाओ दो !" भाभी ने शान्त स्वर में कहा—"चलो अपने कमरे में। लाये देती हूँ स्वेटर।"

"यहीं लाकर दो। अभी, फौरन !"

भाभी ने इधर को पीठ करके स्वेटर उतारा, फिर उधर को मुँह करके शान्त स्वर से कहा—"यह लो !" और नतमुख किये हौले से कहा—"बाकी कपड़े भी उतरवा लो तन के !"

सुखदेव क्षण भर भौंचक्का-सा खड़ा रहा। स्वेटर वह सामने पड़ा था और भाभी सिर झुकाये फिर दाल बीनने लगी थीं। सुखदेव वह स्वेटर उठाने लगा, तो एक बार भाभी के झुके मुख की ओर देखा। आँखों से आँसू टपक रहे थे भाभी के।····

वही कल वाला बातूनी आदमी सुबह होते ही फिर आ धमका था। ब्रजलाल को अपने साथ ले गया सड़क तक, बातें करते-करते। साढ़े नौ बजे उधर से लौटे, तो हँस रहे थे। खाने बैठे तब भी हँस रहे थे।

हँसते गये और खाते गये। और खाते-खाते ही हँसकर बोले—"तुम्हारी देवरानी को देख आये।"

श्यामा तब से गुम-सुम बैठी थी। वह सुन कर कुछ न बोली। पति ने हँस कर कहा—"लड़की जरा उठते कद की है। सुखदेव के कन्धे तक समझो।"

श्यामा ने फिर भी कुछ न कहा। पति हँसकर बोले—"पैसा बहुत है उसके पास। सुखदेव को विलायत भेजने को तैयार है। एक मकान दहेज में देने को कह रहा है।"

श्यामा फिर भी चुप रही।

ब्रजलाल ने खाना समाप्त करके पानी पिया और उठ गये। घड़ी की ओर देखते गये और कपड़े पहनते गये। फाइल सम्हाली और शीशे में अपना मुँह देखा और बाहर को बढ़े कि श्यामा ने रास्ता रोक कर कहा—"मेरे लिए स्वेटर ला दो।"

"स्वेटर!"—पति ने झिड़की देकर कहा—"क्या कह रही हो? मुझे आफिस को देरी हो रही है और तुम स्वेटर की फर्माइश कर रही हो। सुखदेव से कहो।"

श्यामा ने सिर झुका कर कहा—" तुम मुझे कुछ रुपया दो आज। मैं मँगवा लूँगी किसी से।"

"किसी से क्यों?"—ब्रजलाल ने जल्दी से एक दस रुपए का नोट निकाल कर कहा—"सुखदेव ले आयेगा। लो, थामो। है कहाँ सुखदेव?"

पर सुखदेव का पता न था। घण्टे पर घण्टा बीतता गया। सुखदेव जाने कहाँ जाकर बैठ गया था। खाना ठण्डा होने लगा। श्यामा बार-बार दरवाजे तक आकर दूर तक नजर दौड़ाने लगी। दोनों लड़के एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चाय वाले की दूकान पर जाकर चाचा-जी को खोज आये और उदास होकर भूखे-प्यासे लेट रहे चाचाजी के पलंग पर।

दूर गली के छोर पर एक संगी लड़का रहता था। श्यामा ने घबरा कर बड़े मुन्ना से कहा—"जा तो, विद्याभूषण के यहाँ चला जा, भैया! कहियो कि हमारे चाचाजी अभी तक घर नहीं लौटे। तुमको मिले थे? कहाँ गये हैं चाचाजी? कहियो कि हमारी माँ बहुत घबरा रही हैं।"

तभी खट-से किसी के जूतों की आवाज हुई। श्यामा ने चौंक कर देखा, तो सुखदेव सिर झुकाये फीते खोल रहा था।

खाते समय बिल्कुल सन्नाटा रहा। लड़के भी इशारे से एक-दूसरे से बातें करते रहे। सुखदेव ने तो एक बार भी थाली से सिर न उठाया।

तीनों जने खाकर कमरे में लौट गये और लड़कों की धूम-धड़ाक् सुनायी देने लगी, तो श्यामा ने एक सन्तोष की साँस ली।

सहसा बड़े लड़के ने हाँफते आकर माँ को एक कागज दिया और बोला—"चाचाजी ने दिया है। ले, पेन्सिल ले यह। जवाब लिख।"

श्यामा ने हाथ का काम रोक कर अचरज से वह कागज पढ़ा। सुखदेव ने लिखा था—

"मुझसे प्रोफेसर शर्मा की एक किताब खो गयी है। आज उन्होंने अपनी किताब माँगी है। बाजार से खरीद कर ले जाऊँगा। साढ़े दस रुपए चाहिए। आप किसी से उधार दिलवा दीजिये। मैं सुबह से रुपयों की कोशिश करता रहा, पर कहीं नहीं मिले। आप कहीं से दिलवा दीजिये। भाई साहब से न कहियेगा, आपको मेरे सिर की कसम है। इति।"

श्यामा ने उसी कागज की पीठ पर लिखा—

"मेरे पास दस रुपए हैं। आप चाहें, तो ले सकते हैं। आठ आने का इन्तजाम कर लीजिये। इति।"

जरा देर बाद लड़का फिर दूसरा कागज ले आया। सुखदेव ने लिखा था—

"दस रुपए ही सही। दे दीजिये। भाई साहब से न कहियेगा। मैं अगले महीने में आपको रुपये लौटा दूँगा। इति।"

श्यामा ने दूसरी ओर लिखा—

"मैं आपके भाई साहब से नहीं कहूँगी। आप ये रुपये मुझे अब लौटाइएगा नहीं, आपको मेरे सिर की कसम है। इति।"

(४)

शाम को सुखदेव कालेज से लौटा, तो घर में कुहराम-सा मचा था। बड़ा लड़का मुन्ना बाहर आँगन में खड़ा रो रहा था और भाभी वाले कमरे से छोटे की चीख-पुकार सुनायी दे रही थी—"हाय चाचा जी! हाय चाचा जी!"

सुखदेव ने घबरा कर मुन्ना से पूछा—"क्या हुआ, रे?"

मुन्ना रोता-रोता बोला—"अम्माँ ने उसे बहुत मारा है। अब रस्सी से बाँध रही हैं।"

सुखदेव ने जल्दी से किताबें आलमारी में फेंकीं और जूते बिना उतारे फड़ाक्-से किवाड़ खोल कर भीतर जा खड़ा हुआ, जहाँ भाभी छोटे भतीजे के दोनों कोमल-कोमल हाथ रस्सी से बाँध रही थीं और मुख से कहती जा रही थीं—"बुला चाचा जी को! देखूँ, कौन तुझे बचाता है! और चिल्ला, और पुकार चाचा जी को!"

सुखदेव ने धक्का देकर श्यामा को पीछे ढकेल दिया और जल्दी-जल्दी बच्चे के हाथ खोल कर उसे कलेजे से लगा लिया। बच्चा चाचा जी से चिपट कर खूब फूट-फूट कर रोने लगा।

आँखों में आँसू भरे सुखदेव ने भाभी की ओर निहार कर पूछा—"क्यों मारा तुमने इसे?"

भाभी न बोलीं। हाथ पर हाथ धरे बैठी रहीं।

"क्यों मारा तुमने इसे?"

भाभी ने हाथ उठा कर कहा—"जरा अपने कमरे में तो जाकर

देखो ! तुम्हारी भरी दावात उलट दी नासपीटे ने। एक रुपए का नुकसान कर दिया।''

सुखदेव ने कहा—''इसीलिए तुमने मारा, क्यों ?''

भाभी चुप रहीं।

सुखदेव ने कहा—''आज माफ करता हूँ। आइन्दा जो तुमने बच्चे पर हाथ चलाया, तो मैं खाना छोड़ दूँगा। समझीं ?''

भाभी न बोलीं।

सुखदेव ने बाहर जाते-जाते कहा—''हत्यारिन ने जरा-सी दावात के पीछे अधमरा कर दिया मेरे लड़के को।''

और वह बच्चे को पुचकारता, बाहर आँगन तक आया, तो एक किनारे हाथों में ढँका थाल लिये प्रियम्वदा के नौकर को खड़ा पाया। तब वह भाभी को एक आवाज देकर भतीजे को लिये-लिये अपने कमरे में आकर टहलने लगा।

प्रियम्वदा के यहाँ भोज हुआ था। बच्चों को बुलाया था, पुरुषों को बुलाया था, स्त्रियों को बुलाया था। बच्चे, पुरुष, स्त्री कोई भी न गया यहाँ से। दुखी होकर प्रियम्वदा ने स्वयं भोजन न किया। फिर उदास होकर नौकर के हाथ बच्चों के लिए मीठा भिजवाया, अपनी माँ से कह कर।

नौकर थाल खाली करके हाथ जोड़ कर विनय के स्वर में श्यामा से बोला—'माँ जी, आपको बीबीजी ने बुलाया है। जब कहें, मैं आपको लिवा ले चलूँ। एक दिन चल कर हमारी झोपड़ी पवित्र कर आइये, माँ जी !''

श्यामा को बहुत अच्छा लगा। प्रसन्न होकर बोली—''वह तो मेरा अपना ही घर है। तू ऐसी बातें मत कह।''

नौकर हाथ जोड़ कर बोला—''तो कब चलेंगी माँ जी ?''

श्यामा ने अधीर भाव से कहा—''कल इतवार है। इन लोगों की

छुट्टी होगी। कल ही चलूँगी। तू दोपहर को आ जाना। खा-पीकर चलूँगी।"

नौकर सिर हिला कर बोला—"सो नहीं होगा, माँ जी! वहीं जीमियेगा। रूखा-सूखा जो कुछ हम गरीबों के घर बने।"

श्यामा ने हँस कर कहा—"अच्छा यही सही।"

(५)

उस शाम को ब्रजलाल देर से घर लौटे। वह बातूनी फिर मिल गया क्या रास्ते में? खूब भुखा गये थे। आते ही बोले—"खाना लाओ। यहीं कमरे में ले आओ।"

श्यामा ने दृढ़ स्वर में कहा—"खाना नहीं है।"

पति ने अचरज से पूछा—"क्यों, अभी तक खाना नहीं बना क्या?"

"बना है", श्याम ने दृढ़ स्वर में कहा–"लेकिन तुम्हारे लिए नहीं।"

ब्रजलाल ने खीझ कर कहा—"क्या बक रही हो? जाओ, थाली परोस कर लाओ।"

श्यामा पास वाली कुरसी पर धम्म से बैठ गयी और हाथ उठा कर बोली—"पहले एक बात का फैसला कर दो, तब खाना लाऊँगी।"

"बोलो, क्या है?"

श्यामा ने आगे को झुक कर कहा—"इस घर की मालकिन कौन है?"

ब्रजलाल ने हँस कर कहा—"तुम।"

श्यामा ने कहा—"उस बातूनी आदमी से तुमने यह बात कही या नहीं?"

ब्रजलाल हँसने लगे।

"तब वह मेरे देवर से अपनी लड़की ब्याहने वाला कौन होता है? और तुम्हीं क्या हक रखते हो इस तरह मुझसे बिना पूछे कोई बात कहने का?"

"मैं उसका बड़ा भाई हूँ।"—पति ने हँस कर कहा।

"और मैं कौन हूँ ?"—श्यामा ने आँखें सिकोड़ कर पूछा।

"तुम भाभी हो उसकी !"

"सिर्फ भाभी ?"

ब्रजलाल चुप रह गये।

श्यामा ने सिर तान कर कहा—"जनाब, मैं ही उसकी माँ हूँ। मैं ही उसकी बहिन हूँ। मैं ही सब-कुछ हूँ उसकी। समझे ? मेरी आज्ञा के खिलाफ वह एक कदम नहीं रख सकता। विश्वास न हो, तो करके देख लो कुछ। तुम यह शादी ठहराओ, मैं कल ही उसे लेकर यहाँ से चली जाऊँगी। बहुतेरा कमा लेगा। तुम समझते क्या हो मुझे !"

ब्रजलाल ने कहा—"तुम क्या कहलवाना चाहती हो मुझसे ? जल्दी से बतला दो। मैं कहने को तैयार हूँ। खाना ला दो फिर।"

श्यामा ने कहा—"अब आये ठिकाने पर ! अच्छा कहो, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध...."

ब्रजलाल ने जल्दी से कहा—"तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध...."

श्यामा ने आगे कहलवाया—"कहो—कुछ न होगा।"

"कुछ न होगा।"—ब्रजलाल ने जल्दी से दोहरा कर कहा— "अब खाना ले आओ।"

पर श्यामा न उठी। बोली—"कहो, मुझ से आज गलती हुई है, यानी...." और अचानक सुखदेव को सामने खड़ा देख कर चुप रह गयी वह।

देवर ने शायद वह उतनी आधी बात सुन ली। ब्रजलाल ने सिर उठाया, तो वे भी छोटे भाई को देख कर सकपका गये। श्यामा सिर पर अंचल खींच कर भागी।....

खाना प्रायः समाप्त हो चुका था। ब्रजलाल ने पानी पीकर एक डकार ली, फिर पत्नी के शान्त, सौम्य मुख की ओर क्षण भर निहार कर बोले—"तो यहाँ अपने देवर की शादी न करोगी ?"

"हरगिज नहीं !"—श्यामा सिर हिला कर बोली।

पति ने हँस कर कहा—"वह मुझे सौ रुपए भेंट कर गया है।"

"लौटा दो।" श्यामा ने फौरन कहा।

पति बोले—"लौटा दूँगा। लेकिन परसों सुखदेव को अपनी परीक्षा की फीस दाखिल करनी है। कल इतवार है। कहो तो एक सप्ताह के लिए ये रुपए रख लूँ। पहली तारीख की शाम को वेतन मिल जायेगा। उसी दिन दे आऊँगा।"

"जी नहीं।"

"तब उसकी फीस का क्या इन्तजाम करूँ ?"

"मैं कर दूँगी इन्तजाम। ऊपर वाली मारवाड़िन लोगों के जेवर गिरवी रखती है। मैं अपनी लाकेट गिरवी रख कर तुम्हें रुपए ला दूँगी। अभी ला दूँ ? सन्तोष न हो तो ला दूँ अभी ! तुमने समझा क्या है ?"

ब्रजलाल ने दोनों हाथ जोड़ कर सिर से लगाये और मुँह से कहा—"नमस्कार शत बार !"

श्यामा ने घबरा कर कहा—"अरे, लल्ला आ रहे हैं ! हाथ नीचे करो, हाथ नीचे करो !"

पर सुखदेव इधर न आया। वहीं आँगन में खड़ा-खड़ा बोला—"भाभी, भूख लगी है।"

(६)

रविवार को दोनों भाइयों का नियम-सा था कि सुबह नाश्ता करके निकल जाते यार-दोस्तों में और दोपहर को बारह-एक बजे तक लौटने का नाम न लेते। वही आज भी हुआ।

श्यामा को प्रियम्वदा के घर जाना था। उसने जल्दी-जल्दी रसोई बनायी, फिर सब सम्हाल-सुधार कर वहाँ जाने की तैयारी करने लगी। शीशे के सामने जा खड़ी हुई। भौंहों के नीचे से गाल तक कालिख लगी दीखी। हथेली से रगड़ कर उस कालिख को मिटाने लगी आँखें

मींच कर। काफी देर तक रगड़ा। फिर जो आँखें उघार कर शीशे में देखा तो सनाका हो गया। सारा चेहरा काला हो गया था। सारे चेहरे पर वह कालिख फैल गयी थी।

श्यामा ने घबरा कर चारों ओर नजर दौड़ायी कि कोई देख तो नहीं रहा है। फिर जल्दी से साबुनदानी उठा कर गुसलखाने की ओर भागी गयी।

मुख धोया साबुन से, हाथ धोये साबुन से। फिर पैरों की ओर नजर गयी तो पैर भी बहुत गन्दे दीखे। तब फिर पैरों पर भी साबुन मलने लगी।

सहसा बाईं ओर किसी की परछाईं देख कर श्यामा ने साबुन मलते मलते उधर को मुँह किया तो हाथ जहाँ के तहाँ रुक गये और आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा।

सामने नंगे बदन, कन्धे पर धोती-तौलिया डाले, सुखदेव खड़ा था निश्चल, निर्वाक्।

श्यामा से कुछ न बन रहा था। यों ही पैर पर साबुन लगाये बैठी रही।

आखिर सुखदेव ने ही वह निस्तब्धता तोड़ी। मुसकरा कर मुँह खोल कर बोला—"बैठी क्यों हो ? पैर धोकर हटो न !"

तब मानों श्यामा की चेतना लौटी। ओंठों में तनिक मुस्करायी और जल्दी-जल्दी पैर धोकर उठ आयी वहाँ से। कमरे में आकर शीघ्रता से साबुन की टिक्की एक कपड़े पर दबा-दबा कर सुखायी, फिर बड़े जतन से उसे साबुनदानी में रख कर ले आयी।

सुखदेव पाइप खोल कर खड़ा था और जाने क्या सोचता पानी की धार को देख रहा था। खट-से भाभी ने पैरों के पास वह साबुनदानी रख दी और लौट चलीं लम्बे डग भरतीं।

सुखदेव क्षण भर साबुनदानी को निहारता रहा। फिर उसने नीचे

झुक कर साबुन की टिक्की उठा ली और फिर तड़ित् वेग से दूर जाती भाभी की ओर वह साबुन फेंक दिया जोर से।

पर साबुन भाभी के न लगा। जाने कैसे उसी क्षण ऊपर वाले मारवाड़ी सेठ सामने आ पहुँचे और जाने कैसे वह साबुन सेठ जी की तोंद पर फटाक्-से लगा।

"अरे, मार डाला रे !"—सेठजी वहीं पेट पकड़ कर बैठ गये।

श्यामा ने पीछे घूम कर देखा और सुखदेव ने भी देखा। घबरा कर वह सेठजी के पास दौड़ा आया और दोनों हाथों से उनकी वजनी देह उठाता बोला—"अभी इधर एक बन्दर कूदा था। मैंने देखा था, उसके हाथ में यह साबुन था।"

सेठजी ने एक हाथ की टेंक जमीन पर लगायी और दूसरे हाथ में वह सामने पड़ा साबुन लेकर उठ बैठे किसी तरह। फिर उस साबुन को लौट-पौट कर निहारा और सुखदेव की ओर तिरछी नजर से ताक कर बोले—"साबुण तो नयो है ! छै आणे को माल दे गयो हनूमान् !"

सेठ जी साबुन लेकर चल दिये। सुखदेव और श्यामा देखते रह गये।

× × ×

....आखिर प्रियम्वदा का नौकर आ गया बुलाने। श्यामा ने दोनों लड़कों को सजा कर बाहर खड़ा किया। फिर डरती-डरती देवर के पास आकर बोली—"जरा अपना रूमाल दे दोगे ?"

"क्यों, तुम्हारा रूमाल क्या हुआ ?"

"मेरे पास कब था रूमाल ?"

"तो यों ही जाओ।"

श्यामा ने अनुनय करके कहा—"दे दो जरा देर के लिए !"

सुखदेव ने चिल्ला कर कहा—"नहीं दूँगा रूमाल ! चली जाओ सामने से !"

श्यामा ने मुँह पर हाथ रख कर कहा—"अरे, धीरे बोलो ! बाहर नौकर खड़ा है !"

सुखदेव ने और चिल्ला कर कहा—"नौकर की ऐसी-तैसी !"

श्यामा घबरा कर बाहर निकल आयी ।

(७)

प्रियम्वदा ने उसी विनम्र टोन में कहा—"मैं सच कह रही हूँ दीदी, न जाने कितनी बार उनके मुँह से यह बात सुन चुकी हूँ कि मेरी भाभी के सामने लक्ष्मण की सीता भी तुच्छ हैं । कितनी ही बार तुम्हारी बड़ाई करते-करते, तुम्हारी बातें सुनाते-सुनाते, आँखों में आँसू भर लाये हैं और भरे गले से कहा है कि 'भाभी मेरी इस धरती माता की तरह हैं । ऐसी ही सहनशील, ऐसी ही विशाल, ऐसी ही महान् !' मुझ से कहते थे कि उन की सेविका बनकर जीवन सफल कर लेना अपना । तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जायेंगे ।"—कहते-कहते प्रियम्वदा का स्वर करुण हो उठा और नयन गीले हो गये ।

श्यामा न बोली । बोल नहीं पा रही थी । उसके कण्ठ में जाने क्या आकर अटक गया था । फिर रुक कर भरे गले से बोली—"मैंने जाने कितने पुण्य किये थे उस जन्म में, जो ऐसे पति और देवर पाये । सच मानो बहिन, वे लोग देव-योनि के हैं । राह की धूल उड़ कर राजमुकुट से जा लगी । पर मुकुट तो मुकुट ही है सखी, और धूल धूल !'

प्रियम्वदा की आँखें सजल हो गयी थीं । उन्हीं सजल आँखों से दीदी का सौम्य मुख निहार कर बोली—"दीदी, तुम देवता के कण्ठ की वरमाला हो । राह की धूल तो मैं हूँ, जो इन चरणों से लग कर पवित्र हो गयी !" कह कर उसने श्यामा के पैरों से अँगुलियाँ लगा कर माथे से छुआ लीं ।

तभी छोटा लड़का घर की पालतू बिल्ली को गोद में लिये आ

खड़ा हुआ। प्रियम्वदा ने दोनों हाथ बढ़ा कर उसे गोदी में खींच लिया, फिर दो बार उसके शुभ्र, सुन्दर कपोलों का चुम्बन करके बोली—"तुम्हारा क्या नाम है भैया ?"

लड़के ने ऊपर मुँह करके कहा—"पहले तुम अपना नाम बतलाओ !"

प्रियम्वदा हँसने लगी।

श्यामा ने हौले से कहा—"ये तुम्हारी चाची जी हैं। समझे ?" फिर प्रियम्वदा की स्वच्छ साड़ी की ओर देख कर बोली—"बेशऊर, चमार कहीं का ! सारी साड़ी गन्दी कर दी पैरों से। उतार दो बहिन इसे।"

लड़का प्रियम्वदा के गले से लिपट कर बोला—"नहीं उतरूँगा। ऐं चाची जी ?"

प्रियम्वदा ने पुलकित होकर बच्चे को फिर चूम लिया और हौले-हौले कहने लगी—"मेरा राजा भैया विलायत जायेगा पढ़ने। बैरिस्टर बनेगा न ?"

लड़के ने कहा—"मैं तो प्रेसीडेण्ट बनूँगा।"

श्यामा हँसने लगी। हँसती-हँसती बोली—"यही सब रटा दिया है चाचा जी ने !"

प्रियम्वदा पुलकित होकर बोली—"कहते हैं कि मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध यही है कि इन दोनों को बड़ा आदमी बना दूँ। भैया ने आधे पेट रह कर, पसीना बहा कर मुझे आदमी बनाया है। मैं अपने तन का रक्त देकर इन बच्चों के व्यक्तित्व महान् कर सका, तो जीवन सफल समझूँगा। क्यों रे, विलायत जायेगा न ?"

लड़के ने प्रियम्वदा की गोदी में सिर छिपा कर कहा—"नहीं चाची जी, मुझे तो चाचा जी अमेरिका भेजेंगे पढ़ने को। हवाई-जहाज से जाऊँगा। तुम कभी बैठी हो चाची जी, हवाई-जहाज में ?"

तभी सहसा प्रियम्वदा की माँ ने आकर कहा—"बेटी चलो, खाना खाओ।"....

रामाशंकर प्रियम्वदा का बड़ा भाई था। चौक में उसकी बहुत बड़ी दूकान थी। पत्नी उसकी मर गयी थी। घर का कर्ता-धर्ता वही था।

रामाशंकर व्यस्त होकर श्यामा के लिए स्वयं थाली लगा रहा था कि वह आ पहुँची। अम्माँ भीतर जाने क्या लेने गयीं कि चट से श्यामा कढ़ाही के पास आ बैठी और एक पूरी बेल कर गर्म घी में छोड़ दी और प्रसन्न मुद्रा से बोली—"आज भैया को मैं बना कर खिलाऊँगी।"

उसी सजी थाली में रामाशंकर भैया को खिला कर श्यामा चूल्हे के पास से उठ आयी। फिर पास खड़ी प्रियम्वदा का हाथ पकड़ कर खींचती हुई बोली—"आओ सखी! मुझे तो बड़ी भूख लगी है।" और वही भैया की जूठी थाली आगे को खींच ली और पुकार कर कहा—"अम्माँ, हम लोगों को खाना परोस जाओ।"....

अम्माँ ने धड़कता कलेजा लिये पूछा—"तो फिर बेटी, मैं कल रामा को भेजूँ बड़े दामाद के पास ?"

श्यामा ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—"बड़े दामाद कौन खेत की मूली हैं अम्माँ, तुम बड़ी बेटी की इज्जत गिराओगी क्या ? तुम्हारी बड़ी बेटी ने जो कुछ कह दिया, उसे पत्थर की लकीर समझो।"

अम्माँ मुँह देखने लगीं बड़ी बेटी का।

बड़ी बेटी ने तब तनिक नाराज-सी होकर कहा—"तुम्हें यकीन नहीं हुआ क्या अम्माँ ? अरे, मैं कहती हूँ सुखदेव के साथ प्रियम्वदा की शादी होगी, होगी, होगी। बस !"

रामाशंकर भी पास आ खड़ा हुआ था। श्यामा ने उस की ओर देख कर पूछा—"भैया, अपनी दूकान पर साबुन भी बिकता है न?"

"बहुतेरा साबुन है तुम्हारी दूकान में। साबुन की तो एजेन्सी तक है।"
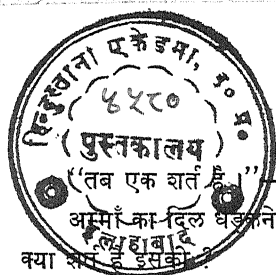
"तब एक शर्त है।"—श्यामा ने अँगुली उठा कर कहा।

अम्माँ का दिल धड़कने लगा। रामाशंकर भी घबराया कि भगवान् क्या शर्त है इसकी ?

श्यामा अँगुली उठा कर बोली—"भैया, तुम्हें हर महीना मुझे एक साबुन की टिक्की देनी होगी। बोलो, हामी भरते हो ?"

रामाशंकर ठहाका मार कर हँस पड़ा।

अम्माँ ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"हाय पगली !"

पर श्यामा न हँसी। बल्कि स्वर में दुःख भर कर बोली—"तुम्हें क्या मालूम अम्माँ, कि मैं साबुन के लिए कितनी परेशान रहती हूँ।"

रामाशंकर ने गद्गद कण्ठ से कहा—"बहिन, आज ही तुम्हारे पास एक पेटी साबुन भिजवा दूँगा।"

नौकर पीछे से बोला—"मैं दे आऊँगा शाम को।"

जाने किधर से बड़े लड़के ने सब सुन लिया। वह रामाशंकर के आगे आकर बोला—"मामा जी, आज जीजी से और चाचा जी से साबुन के पीछे खूब लड़ाई हुई थी।"

श्यामा ने चिल्ला कर कहा—"चुप रह चुगलखोर !"

पर लड़का न माना। उसी दृढ़ स्वर में बोला—"सच मामा जी, इसने चाचा जी का साबुन ले लिया था। सो चाचा जी ने—"

श्यामा ने लपक कर उसका मुँह बन्द कर दिया।

सारा घर हँस रहा था।

आर्टिस्ट

रायल आर्टिस्ट सीताराम के मकान से सिर्फ बीस गज की दूरी पर जब अचानक ही एक नया स्टुडियो खुलने लगा तो वह पहले तो भौंचक रहा, पीछे झल्लाया मन ही मन, फिर दुखी होकर अपने पुराने ग्राहकों के पास जाकर कहने लगा—"सुना आपने ? शहर में नया स्टुडियो खुल रहा है । कोई परदेशी, अनाड़ी छोकरा अब आप लोगों के फोटो खींचा करेगा ।"

ग्राहकों ने शान्तभाव से कहा, "खोलने दो उस अनाड़ी परदेशी को स्टुडियो । तुम अपनी जगह रहोगे सीताराम । बीस साल से तुम यहाँ अकेले फोटो खींच रहे हो । सारा शहर तुम्हारा आर्ट जानता है । तुम्हारे-जैसा हुनर वह कहाँ से लायेगा ?"

सीताराम थोड़ा सन्तुष्ट होकर कहता—"सुना है, सौ-सौ पावर के बल्व लगवा रहा है दूकान में और भीतर 'डार्क-रूम' तैयार कराया है ।"

ग्राहक कहते—"वह चाहे हजार पावर के बल्व लगाये, खास चोज तो आर्ट (कला) होती है । अपने आर्ट पर भरोसा रखो सीताराम । उसके स्टुडियो पर मक्खियाँ भिनकेंगीं । सब्र रखो तुम, सब्र का फल मीठा होता है ।"

सीताराम अपने आर्ट पर भरोसा किये रहा और उसके देखते-देखते पड़ोस में वह नया स्टुडियो खुल गया एक दिन । परदेशी, तरुण युवक, कामता प्रसाद फोटोग्राफर ने सिटी मजिस्ट्रेट से उद्घाटन कराया अपने स्टुडियो का । सबको मीठा खिलाया और रात को देर तक दूकान के आगे गाना-बजाना चलता रहा ।

खिन्न मन लियें सीताराम फिर एक बार अपने पुराने ग्राहकों के पास पहुँचा तो किसी ने कोई खास दिलचस्पी न ली उसकी बातों में और अन्त में वही जुमला फिर दुहरा दिया—"अपने आर्ट पर भरोसा रखो सीताराम।"

सीताराम अपने आर्ट पर भरोसा किये रहा पर आर्ट ने साथ न दिया। क्रमशः उसके पुराने ग्राहक टूटने लगे और क्रमशः आमदनी कम होने लगी। कामता प्रसाद के नये-नये सुसज्जित स्टुडियो की ओर ग्राहक अनायास ही खिचता चला जाता और भीतर, साफ-सुथरे कमरे में, स्प्रिंगदार कुरसी पर बैठता, चेहरे पर तेज रोशनी डलवाता और कामता प्रसाद का विनम्रता-भरा 'धन्यवाद' सुनता और तीसरे दिन नकद रुपये देकर केशमेमो के साथ फोटो की कापियाँ ले जाता।

सीताराम की आमदनी कम होने लगी। सब्र का फल मीठा न होकर कड़वा होता गया और कामता प्रसाद के नहीं, सीताराम के स्टुडियो पर मक्खियाँ भिनकने लगीं।....

सीताराम का स्टुडियो उसके घर में था। उत्तर दिशा वाली तितरी को ही वह स्टुडियो के नाम से पुकारता था। किनारे कोठरी थी सीलन-भरी। यह उसका डार्क-रूम था। तिदरी की दीवालों से चूना झरता था बराबर, जगह-जगह भीतर की ईटें दीखने लगी थीं, इसलिए सीताराम ने सामने की दीवाल पर दोनों ओर दो बड़ी-बड़ी कीलें गाड़ रखी थीं। फोटो खींचना होता तो उन्हीं कीलों पर औरत की पुरानी शाल टाँग देता। लोहे की घिस कर चिकनी हुई कुरसी थी एक। उसी कुरसी पर ग्राहक को बिठा कर सामने कैमरा खड़ा करके बार-बार परदे में मुँह डालकर देखता और बार-बार ताकीद करता—"बायीं ओर....यस....दायीं ओर यस....कन्धा नीचे....गरदन सीधी....सीना निकालो।" और फिर सिर हिला कर निराशा से कहता—"गलत! पोज जब तक फिट नहीं बैठेगा—फोटो खिंच नहीं सकता। और लम्बे

डग भरता इधर आता, अपने बलिष्ठ हाथों से ग्राहक का शरीर घुमाता, सिर ठीक करता फिर परदे में मुँह डाल कर देखता—"राइट्।" और हाथ उठा कर कहता—"स्टिल। यस, अब हिलना मत।" पर तभी जाने कहाँ से एक मक्खी भिनभिनाती आ जाती और ग्राहक की नाक पर बैठ जाती और ग्राहक हाथ से उसे उड़ाता तो सीताराम खफा हो कर कहता—"हिल गये। सब चौपट!" ग्राहक संकोच से कहता—"मक्खी उड़ायी थी।" तब सीताराम एक खास अन्दाज से पुकार लगाता—"मिसेज सीताराम।" मिसेज सीताराम शायद पहले से ही तैयार रहतीं। बिना देखे सीताराम आर्डर देता—"पंखा....मक्खी.... ।" और मिसेज सीताराम पंखे से ग्राहक की मक्खियाँ उड़ाने लगतीं। सीताराम फिर एक बार पोज ठीक करता ग्राहक का और ऊँची चढ़ी आवाज में कहता—"यस, रेडी प्लीज। ओपन आइज। स्माईलिंग फेस (तैयार। आँखें खुली हुई और चेहरे पर मुस्कान)।" और खट-से सामने वाला ढक्कन हटा देता।

और इसके बाद ग्राहक जब-तब आकर फोटो के लिए तकाजा करता रहता और सीताराम बतलाता रहता—"फुरसत होने दो जनाब, धीरज रखो। आर्ट का मामला है। बीड़ी-सिगरेट की दूकान नहीं है यह कि चट-से उठा कर दे दिया सौदा। फोटो तो तैयार हो गया है, लेकिन मुझे अभी "फिनिशिंग टच" देना है न! बस, सारी अदाकारी उसी में है। आँखें तुम्हारी बड़ी कर दूँ या छोटी, ओंठ मोटे कर दूँ या गोल-मटोल—सब मेरे हाथ में है : क्या समझे ?"

ग्राहक हँस कर चला जाता। छोटा-सा शहर और उस शहर में एकमात्र फोटोग्राफर रायल आर्टिस्ट सीताराम। बड़ी शान से, बड़ी अदा से और बड़े कायदा-कानून से वह फोटो खींचता रहा था इतनी सालों तक। बड़ी से बड़ी सोसाइटी में, अफसरों के यहाँ, ग्रुपिंग के लिए उसे ही बुलाया जाता रहा और सैकड़ों की, बल्कि हजारों की संख्या में उसके

यहाँ 'निगेटिव' रखे थे। उन बच्चों के, जो अब बाप बन गये थे, उन नौजवानों के, जो अब बूढ़े हो गये थे, उन बूढ़ों के जिनका अब दुनियाँ में कहीं नामों-निशान न था और उन सुकुमारी नवयुवतियों के 'निगेटिव' उसके पास थे, जो अब माता जी और दादी जी हो गयी थीं। एक संग्रहालय था मानो उसके पास, एक इतिहास था जैसे इस पूरे शहर का और आर्ट उसके हाथ में सचमुच था। और सीताराम बहुत ही जिन्दा-दिल, उदार और भावुक प्रकृति का आदमी था।

अनन्तराम वर्मा की लड़की आज तीन बच्चों की माँ है। सात-आठ साल पहले, जब उसकी शादी ठहर रही थी—उसके फोटो की माँग की लड़के वालों ने। लड़की बिलकुल साधारण सूरत-शक्ल की थी—माथा कुछ ज्यादा चौड़ा था और जबड़ा भी फैला हुआ-सा लगता था। सीताराम फोटो खींचने आया तो वर्मा जी ने एकान्त पा कर कहा—"कुछ हो सकता है सीताराम ? वे लोग सुन्दर लड़की चाहते हैं। सारा दारोमदार इसी फोटो पर है। विद्या तुम्हारी बेटी है सीताराम, है कि नहीं ?"

"हाँ।" सीताराम ने शान्त भाव से कहा—"अभी कुछ न कहूँगा। मुझे थोड़ी कोशिश करने दीजिये। मेरा आर्ट अगर मोहल्ले की बेटी के काम न आया तो इसे बेकार ही समझूँगा।"

फोटो तैयार होकर आया और वर्मा जी के घर वालों ने उसे देखा तो फिर देखते ही रह गये। लड़की का चेहरा एकदम निर्दोष और सलोना-सलोना हो गया था। वर्मा जी रुपये देने लगे पाँच तो सीताराम ने शान से कहा—"मेरा इनसल्ट (अपमान) करने का आपको कोई हक नहीं है साहब !" वर्मा जी झेंप कर फिर से बटुआ खोलने लगे तो सीताराम ने हाथ पकड़ लिया उनका और चेहरे पर नजर जमा कर बोला—"आप अजीब आदमी हैं मिस्टर, मुझ से उस दिन खुद कह रहे थे कि विद्या तुम्हारी बेटी है और आज आप मुझे ये रुपये दिखा रहे हैं। बेटी के लिए

आर्ट खर्च किया है, किसी ऐरे-गैरे के लिए नहीं ।" और सड़ाक-से आँगन के बाहर हो गया । और इस जरा-सी घटना ने जैसे उसे बोध करा दिया कि उस मुहल्ले की ही नहीं, इस शहर भर को हर लड़की उसकी बहन-बेटी है और बहन-बेटियों की शादी के लिए फोटो खींचना तो ठीक है, पर उसके दाम लेना समझो पाप बटोरना है । तब से फिर उसने ऐसे फोटो हमेशा फ्री बना कर दिये सारे शहर को ।

दूसरा एक बोध तब हुआ, जब दीन दयालु पंडित का इकलौता जवान बेटा चल बसा । नयी ब्याह कर लायी पुत्र-बधू ने पति की लाश को कस कर पकड़ लिया और बेसुध हो गयी लाश के सीने पर सिर टेक कर । जब सास-ससुर ने रो-रो कर बहुत समझाया कि—इस मिट्टी को कब तक पकड़े रहेगी, कि मिट्टी का क्या करेगी अब, कि मिट्टी भी कभी किसी से बोली है ? तो नयन मुँदे हो हतभागिनी ने आँसू गिराते कहा टूटी वाणी से कि—अपने बेटे का फोटो उतरवा लो माँ, कि मेरी पूजा के लिए सहारा कर दो माँ, कि जिन्दगी का अवलम्ब कर दो माँ ।

तब सीताराम की बुलाहट हुई । दौड़ा-दौड़ा आया और जमीन पर पड़ी लाश का फोटो खींचा उसने । जब फोटो तैयार हुआ तो उसे देख कर खुद ही रोने लगा आँसुओं से और तीनों कापियाँ कागज में लपेट कर पंडित जी के द्वारे जा खड़ा हुआ । पंडित जी वे फोटो लेकर ज्यों ही भीतर को मुड़े, सीताराम उल्टे-पैरों भाग छूटा वहाँ से और महीनों पंडित जी को अपनी शक्ल न दिखायी और मन में निश्चय कर लिया कि अब कभी किसी लाश का फोटो खींचने न जायेगा और गया अगर तो फिर दाम न लेगा कभी ।

और वह जो खजांची साहब के यहाँ शादी हुई थी छोटी लड़की की, उस की याद अभी तक है सबको । एक ग्रूपिंग तो वर-वधू और दोनों ओर के सम्बन्धियों की हुई थी । दूसरी ग्रूपिंग में खजांची साहब के पाँचों बेटों ने अपने नये-नये बहनोई को बीच में बिठाया ।

और फिर सीताराम को कोने में ले जाकर पाँचों ने घेर कर अपनी ख्वाहिश जाहिर की तो वह सिर टेढ़ा किये खड़ा रह गया।

पाँचों लड़के लखनऊ में पढ़ते थे और बड़े हँसमुख थे। मझले ने कहा—"इतना भी नहीं कर सकते सीताराम ? लखनऊ में ऐसे-ऐसे आर्टिस्ट हैं...."

"चुप रहो तुम ! सीताराम को मामूली आर्टिस्ट मत समझो। यह हमारे शहर की एक खास हस्ती है।" बड़े ने कहा।

सीताराम को जोश आ गया, सिर हिला कर बोला—"यस सर, जैसा आप चाहते हैं, हो जायेगा।"

पाँचों लड़के एक साथ चिल्ला कर बोले—"शाबास। रायल आर्टिस्ट जिन्दाबाद।"

और जनाब, जब फोटो तैयार होकर आया तो पाँच पांडवों के बीच द्रौपदी "बैठायी हुई थी—" साड़ी पहने और चश्मा लगाये।

खजांची साहब का सारा घर लोटन-कबूतर हो गया हँसते-हँसते।

"अच्छा बोलो, कितना चार्ज हुआ तुम्हारा ?" बड़े लड़के ने खुशी से पूछा।

सीताराम ने गरदन टेढ़ी करके कहा—"चार्ज मेरा लम्बा है मिस्टर, लखनऊ आने वाला हूँ। पूरे लखनऊ की सैर करानी होगी मुझे।"

"मंजूर है।" बड़े लड़के ने कहा।

छोटा बोला—"हम तुम्हें लखनऊ की आर्ट-गैलरी दिखलायेंगे। जिन्दगी में ऐसी चीज तुमने कभी न देखी होगी सीताराम।"

सीताराम ने सिर हिला कर कहा—"ऐसा मत कहिए बरखुरदार, मैं पेरिस की आर्ट-गैलरी का मुजायका ले चुका हूँ।"

....ओह कितनी सालें हुईं। कितनी पुरानी दास्तां है। सीताराम की जिन्दगी का सब से खूबसूरत सपना हो जैसे।

गाँव के मिडिल स्कूल में पढ़ रहा था सीताराम, जब उसके माँ-बाप का छः महीने के भीतर स्वर्गवास हो गया। बिल्कुल अकेला रह गया वह और चाचा-चाची के यहाँ जिन्दगी फिर दूभर हो उठी उसकी। साढ़े पाँच फुट का लम्बा तगड़ा नौजवान, चौड़ा चकला सीना और पुष्ट मांसल शरीर। एक विचार उठा उसके मन में और भूखा-प्यासा, पैदल ही शहर को चल दिया और भर्ती के दफ्तर में जा खड़ा हुआ। प्रथम विश्व-युद्ध का जमाना था और फौज में भर्ती हो रही थी। सीताराम रंगरूट होकर लाम पर चला गया। अपनी मातृ-भूमि से बहुत दूर, यूरोप में जा पहुँचा युद्ध के ठीक मोरचे पर। कितने भीषण, अमानुषिक, हृदय द्रावक दृश्य उसकी आँखों ने देखे, कितनी जिन्दगियाँ उसके देखते-देखते मिट्टी में मिल गयीं, पर वीरता और साहस लिये सीताराम अपनी रायफल के साथ आगे बढ़ता गया और आगे बढ़ता गया। उसने अपने देश की शान रखी, उसने विदेशियों को दिखला दिया कि हिन्दुस्तान में कितना शौर्य है। पर अगले मोर्चे पर फतह लेते-लेते सीताराम बुरा तरह घायल हो गया और उसके फेफड़ों में गैस चली गयी शायद। घायल, बेसुध सीताराम कब-कैसे फ्रांस के उस अस्पताल में पहुँचा, उसे कुछ भी ज्ञात न हो सका।

लेकिन होनी होकर रहती है। कहाँ फ्रांस और कहाँ हिन्दुस्तान। कहाँ एक छोटे-से गँवई-गाँव का मिडिल फेल सीताराम और कहाँ वह लावण्यमयी फ्राँसीसी नर्स आरमेंडा। जाने कौन से जन्म के संस्कार जागरित हुए थे कि आरमेंडा को सीताराम से मुहब्बत हो गयी।

युद्ध समाप्त हो गया पर सीताराम स्वदेश न लौटा। अस्पताल की पट्टियाँ तो खुल गयीं, पर रेशमी धागों का बन्धन और दृढ़ होता चला गया। सीताराम स्वेच्छा से वहीं फ्रांस में रह गया आरमेंडा के साथ।

आरमेंडा का पूर्व प्रणयी भी कोई भारतीय युवक ही था, जो एक दिन बर्फ के खेलों में फिसल कर खड्ड में जा गिरा और बर्फ में ही समा गया

हमेशा-हमेशा के लिए। आरमेंडा आँसू भर लाती और सीताराम से कहती कि तुम्हारी ही तरह बोलता था, ऐसी ही आवाज थी उसकी, ऐसी ही खुली हँसी हँसता था।

आरमेंडा को फोटोग्राफी का शौक था और चित्र कला से भारी लगाव था। उसने सीताराम को इस कला का ज्ञान कराया और अच्छा-खासा फोटोग्राफर बना दिया उसे। शायद सीताराम की बाकी जिन्दगी आरमेंडा के साथ फ्रांस में बीत जाती, शायद वह कभी हिन्दुस्तान लौट कर न आता, पर अचानक एक संध्या को सीताराम ने एक पत्र पाया। पत्र किसी गाँव वाले ने लिखा था कि—सीताराम के चाचा की मृत्यु हो गयी है और उसकी चाची एकदम निरुपाय, निराश्रित होकर सड़क पर भीख माँगने की स्थिति में है। फौरन चले आओ, तुम्हें भगवान् की सौगन्ध है, अपने गाँव लौट आओ।

सीताराम इन पंक्तियों का संवरण न कर सका और उसने अपना बिस्तर बाँध लिया। आरमेंडा बहुत ही संवेदनशील थी, उसने उसे रोका नहीं, उसने उसकी यात्रा का सारा प्रबन्ध किया और जब आरमेंडा उसे विदा करने आयी तो उसने सजल नयनों से केवल कहा—"हमेशा हमेशा के लिए विदा, प्रिय, चिर विदा।"

सीताराम ने भरे गले से कहा—"ऐसा मत कहो आरमेंडा, मैं फिर लौट कर तुम्हारे पास आऊँगा।"

पर आरमेंडा के कानों में ये शब्द न गये, आरमेंडा जानती थी, हजारों-हजारों मील से कहीं कोई परदेशी लौट कर आता है।

वही हुआ। सीताराम फिर कभी लौट कर फ्रांस नहीं जा सका। सीताराम की विधवा चाची ने सीताराम के पैरों में जंजीरें डलवा दीं। सीताराम का ब्याह हो गया एक सुन्दर-सी, सलीके वाली गाँव की लड़की से और सीताराम की गृहस्थी बसा कर चाची रामनाम जपती राम जी के पास चली गयीं।

सीताराम अपने आप "रायल फोटोग्राफर—रायल आर्टिस्ट" बन गया। वह केमरा, जो आरमेंडा ने अपनी स्मृति के लिए उपहार-स्वरूप दिया था, सीताराम की जीविका का एकमात्र साधन बन गया। और फिर सीताराम शहर में आ बसा और तब से फिर यहीं जिन्दगी बीत रही थी उसकी।

सीताराम के कोई आस-औलाद न हुई। परन्तु पत्नी उसकी बहुत भली थी। पत्नी ने कभी उसे कोई शिकायत करने का मौका न दिया। कभी नहीं लड़ी वह सीताराम से। झगड़ा केवल एक चीज को लेकर ही जब-तब हुआ था—अरहर की दाल। सीताराम दोनों जून उरद की दाल खाता था। कहता था—यह दाल आदमी को "स्ट्रांग" बनाती है। पत्नी इस एकरसता से ऊब कर कभी-कभार अरहर की दाल बना लेती तो उस दिन सीताराम की त्यौरियाँ चढ़ जातीं। पत्नी से नाराज न होता खुल कर, गालियाँ न देता कभी, बस अपना ट्रंक ठीक करने लगता और धीरे-धीरे बड़बड़ाता—"फ्रांस····आरमेंडा···अब मेरा यहाँ गुजारा न होगा।" और पत्नी सुन लेती, चूल्हे से बटलोई उतार कर दौड़ी आती सीताराम के पैर पकड़ लेती और रोकर कहती—"अब कभी अरहर की दाल नहीं बनाऊँगी। फ्रांस मत जाओ। तुम्हें मेरे सर की कसम।" और सीताराम मान जाता फौरन। फ्रांस कहाँ है, डर के मारे पत्नी ने कभी न पूछा। फ्रांस क्या बम्बई-कलकत्ता से भी दूर है? चुपचाप सोचती रहती और तीस साल तक पति की अनुगामिनी होकर, पति के सुख-दुःख की सहचरी रह कर, एक रात को वह कभी न टूटने वाली नींद में सो गयी। सीताराम ने बहुतेरे जतन किये। तीन-तीन डाक्टरों को दिखलाया, पर कोई भी उसकी पत्नी को महायात्रा के पथ से लौटा न सका। मृत्यु से पूर्व थोड़ी देर के लिए उसे होश आया था, जैसे दीप की लौ बुझते-बुझते एक बार जोर से चमकती है। पति का

हाथ पकड़ कर डूबे-डूबे स्वर में कहा था—"अब तुम फ्रांस चले जाना, आरमेंडा के पास रहना। मुझे भूल जाना अब।"

सीताराम उस रात बालकों की तरह फूट-फूट कर रोया था। इतना भारी बज्रपात हो गया उसकी छाती पर—जिसकी कभी कल्पना भी न की थी। लेकिन आदमी बज्र से भी ज्यादा दृढ़ और बज्र से भी ज्यादा कठोर होता है। सीताराम भी धीरे-धीरे सब सह गया।

....और अब यह समझो नया बज्रपात हुआ उस पर। कामता प्रसाद ने पड़ोस में नया स्टुडिओ खोल कर उसके पेट पर कस कर लात मारी थी मानों। बचपन जैसे-तैसे बीता, जवानी तरह-तरह के अनुभवों में बीती और अब यह बुढ़ापा आ गया तो जिन्दगी के एकमात्र सम्बल पत्नी को छीन लिया भगवान् ने और जिन्दगी का दूसरा सहारा, उसकी रोजी, अब कामता प्रसाद छीने ले रहा था। सीताराम के नक्षत्र बदल गये थे शायद और सप्ताह पर सप्ताह और महीने पर महीने बीतने लगे—उसके यहाँ कोई भी फोटो खिचवाने न आया। अब किसी दिन शायद फाकाकशी की नौबत भी आ जायेगी।

सीताराम को रातों नींद न आती, क्या करे वह ?

सीताराम ने साहस बटोरा, कमर कसी। अच्छा, अब मैं देख लूँगा बच्चू को, कैसे जमते हैं यहाँ इस शहर में। अब तक खामोश रहा, अब उठता हूँ मैं! दस दिन में बोरिया-बँधना लेकर चलते नजर न आयें तो मेरा नाम सीताराम नहीं। पहला मोरचा यों लिया कि—एक परचा छपवा कर शहर भर में बँटवा दिया कि—रायल आर्टिस्ट सीताराम ने जनता की सेवा के लिए अपने रेट्स कम कर दिये हैं। दामों में भारी रियायत—चार्जों में वन-थर्ड (एक तिहाई) की छूट। जनता लाभ उठाये।

पर हाय, जनता ने लाभ न उठाया। जनता को जाने क्या हो गया था। कोई ग्राहक आता तो सीधा कामता प्रसाद के स्टुडिओ में घुस

जाता—सीताराम आँखें फाड़े देखता रहता। तकदीर जैसे नयन मूँद कर सो गयी थी।····आज तक उसे याद क्यों न आयी इस उपाय की, अपने को सारी रात कोसता रहा और तड़के-तड़के ही वह सुलेमान की चौखट पर जा खड़ा हुआ और उसे सारा किस्सा कह सुनाया।

सुलेमान सुनता रहा, फिर उसने बीड़ी सुलगायी, जोर-जोर से दो-तीन कश लिये, फिर बीड़ी दूर फेंक दी नाले पर और गम्भीर स्वर में बोला—"उस्ताद, मैं जुम्मन मियाँ का बेटा हूँ, मुगल खून है मेरे जिस्म में और वह दिन मैं कभी नहीं भूलता जब तुमने मेरी जान बचायी थी। कत्ल के केस में फँसे इन्सान को किसी ने सहारा न दिया। सब साले आँख दिखा गये नाते-रिश्तेदार। तुम अगर उस दिन न होते उस्ताद, तो कोतवाल मुझे हरगिज न छोड़ता। मेरी वजह से तुमने, मैं देख रहा था उस्ताद, तुमने कोतवाल के पैरों पर अपनी टोपी रख दी—गिड़गिड़ाये, अपना जिगरी दोस्त बताया मुझे और उसे राजी कर लिया। मैं बेकुसूर था, पर इस बात को वहाँ कौन सुनता भला? कोतवाल ने गरज कर कहा था—सीताराम, सिर्फ तुम्हारे कहने पर····समझे? तुम मेरे भी तो दोस्त हो····जाओ, छोड़ दिया तुम्हारा सुलेमान। उस्ताद, तुम्हारे एहसानों के नीचे मेरी गरदन दबी हुई है। तुम्हारे लिए मेरी जान हाजिर है, मैं सच्चा मुसलमान हूँ और सच्चा मुसलमान कभी अपनी जुबान से नहीं मुकरता। हुक्म दो तुम, वह साला नया फोटोग्राफर—वह तुम्हें तंग करे। मैं उस हरामी को जिन्दा न रहने दूँगा। तुम हाँ कह दो उस्ताद, दो दिन में उसका सफाया न कर दूँ तो जुम्मन की औलाद नहीं। तुम पर आँच न आयेगी, बेफिक्र रहो। पुलिस साली क्या कर लेगी मेरा, लाश तक का पता न लग पायेगा कभी। बोलो, क्या कहते हो?"

सीताराम घबरा कर हाथ हिलाता बोला—"नहीं-नहीं, सुलेमान भाई, मेरा यह मतलब हरगिज न था। मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ

कि वह किसी तरह यहाँ से चला जाये, यह शहर छोड़ दे। कहीं और अपनी रोजी जा कमाये, मुझे उससे क्या लेना-देना। बस, मेरा एरिया छोड़ दे।"

सुलेमान 'हो-हो' करके हँसा, हँसता-हँसता बोला—"आर्टिस्ट ! हर आर्टिस्ट बुजदिल होता है। अच्छा, उसके जाने का इन्तजाम हो जायेगा। जैसा तुम कहोगे, वही होगा।"....

सुबह-सुबह कामता प्रसाद ने अपनी दूकान खोली तो वहीं पैरों के पास एक छोटा-सा पर्चा पड़ा मिला। किसी ने लिखा था—"सावधान रहो। आज रात को तुम्हारे स्टुडिओ में आग लगने का खतरा है।"

कामता प्रसाद अचरज में डूबा उस पर्चे को बार-बार पढ़ता रहा। आग कौन लगाना चाहता है ? नौकर कह रहा था—सीताराम फोटोग्राफर आप के ग्राहकों को बरगलाता है, बहुत जलता है आप से। उसी जलन से शायद उस ने योजना बनायी है आग लगाने की। पर यह चेतावनी देने वाला कौन है ? कौन है वह, जो मुझ परदेशी की यों सहायता कर रहा है ? कामता प्रसाद सारे दिन सोच में डूबा रहा और रात को जब वह दूकान बन्द करने लगा तो बाहर का सारा सामान नौकर से भीतर वाले कमरे में रखवा दिया।

और दूसरे दिन जब उस ने दूकान खोली तो सचमुच ही नंगे फर्श पर जली हुई दियासलाई की तीलियाँ बिखरी पड़ी थीं और एक गोल-गोल कपड़ा पड़ा था जल कर खाक हुआ।

फिर दो दिन बाद उसी तरह पर्चा पड़ा मिला सबेरे-सबेरे। इस बार लिखा था—"तुम्हारे स्टुडिओ पर पुलिस धावा करने वाली है। तुम नंगी तसवीरें बेचते हो—नंगी औरतों के फोटो। ये फोटो तुम्हारे स्टुडिओ में रखवा दिये जायेंगे। होशियार रहो।"

और पुलिस सच-सच ही आ खड़ी हुई स्टुडिओ के सामने। परन्तु तलाशी में ऐसी कोई चीज न मिली। पिछली रात को दूकान बन्द

करती बेला, कामता प्रसाद को एक पैकेट दीख गया था आल्मारी के पीछे। पुलिस चली गयी तो उस ने वह पैकेट खोला। दंग रह गया, नंगी तसवीरों का पूरा सेट था उसमें।

फिर तीन दिन बाद पर्चा पड़ा दीखा। यों लिखा था उसमें— "तुम्हारे स्टुडिओ में एक जवान औरत फोटो खिचवाने आयेगी और जब तुम उसे भीतर ले जाओगे—बदनाम कर दिये जाओगे, उसे बेइज्जत करने के लिए। सावधान रहो।"

और जब भरी दुपहरिया में एक तरुणी बुर्का ओढ़े आ पहुँची और उसके आगे कुरसी पर बैठ कर अपना गुलाबी-गुलाबी चेहरा दिखला कर लाल ओठों से मुस्करा कर पूछने लगी—"मेरा फोटो खींचिएगा ?" तो कामता प्रसाद से कुछ बोलते न बना, हकला कर रह गया। इतनी रूप-श्री, ऐसी मोहक मुस्कान—स्टुडिओ में जैसे कोई प्रकाश फैल गया हो। परन्तु कामता प्रसाद को उस पर्चे की याद रही। उसने संयम से काम लिया। अपनी तबितत खराब होने का बहाना करके किसी प्रकार तरुणी को विदा कर दिया।

सीताराम की ये चालबाजियाँ, सीताराम की नीचताएँ देख कर एक ओर मन खिन्नता से भर उठता तो दूसरी ओर अपने उस अज्ञात हितकारी के प्रति श्रद्धा से हृदय पुलकित हो जाता, जो उसे बार-बार नाश के कगारे से बाँह पकड़ कर खींच लेता था। कौन है वह देवता ? कभी सामने नहीं आयेगा क्या ? कभी अपने उपकारों से उऋण होने का अवसर नहीं देगा क्या ?

वह देवता सामने न आया। सामने आयी दूसरी चीज। तीन बदमाश गुण्डा टाइप के लोग, नशे में धुत बने, उसकी दूकान के ठीक आगे खड़े होकर अकारण ही भद्दी-भद्दी गालियाँ बकने लगे।

कामता प्रसाद सुनता रहा—सुनता रहा। जब सहन के बाहर हो गया तो हाथ का काम छोड़ कर वह दूकान से नीचे कूद पड़ा। रगों में

जवानी का खून था, तैश आ गया उसे भी। दाँत पीस कर बोला—"खबरदार, अब जो जुबान खोली किसी ने तो धूल चटा दूँगा तीनों को। चले जाओ यहाँ से चुपचाप, अपनी खैर चाहते हो तो, नालायक-बदतमीज !"

"नालायक तू है, बदतमीज तू है साले, दिन-दहाड़े लड़कियों को अपनी दूकान में बुला कर बदफेली करता है और जुबान चलाता है हमसे ! दोगले-कमीने !"

कामता प्रसाद ने बोलने वाले के मुँह पर कस कर जो एक हाथ मारा तो वह गुलटइयाँ खा कर लुढ़क गया और इसके बाद बाकायदा हाथा-पाई होने लगी।....कामता प्रसाद को एक पुलिसमैन ने झटका देकर छुड़ाया एक गुण्डे से तो वह सीताराम के आँगन में खड़ा था। कैसे वे तीनों उसे यहाँ तक खींच लाये—कुछ पता न चला गुत्थम-गुत्थी में। आँगन में सीताराम का बहुत-सा सामान बिखरा पड़ा था, बरतन-भाँडे, कुरसी और केमरा—सब अस्त-व्यस्त दशा में छितरा पड़ा था चारों ओर।

पुलिस तीनों गुण्डों को और कामता प्रसाद को पकड़ ले चली तो उसका सारा शरीर चकनाचूर था चोटों के मारे और उसके कदम लड़खड़ा रहे थे।

कामता प्रसाद ने दो गुण्डों को साथ लेकर सीताराम के घर पर चढ़ाई की थी। उसे आर्थिक क्षति पहुँचायी थी, उसे मार डालने की धमकी दी थी और उसके थप्पड़ मारे थे—बेइज्जत किया था। क्योंकि सीताराम से उसकी पुरानी अदावत थी और सीताराम उसके ग्राहकों को बरगलाता था।

तीनों गुण्डों में से दो ने यही बयान दिया कि हमें कामता प्रसाद ने पाँच-पाँच रुपये देकर यह सब करने को कहा था। उन्होंने अपनी अंटो खोल कर पाँच रुपये का नोट भी दिखाया, जो उन्हें दिया गया था।

तीसरा गुण्डा सीताराम का दोस्त बन गया। उसने कहा—भीतर शोर-गुल सुन कर वह घर में घुसा था। सड़क पर से सनीमा देखने जा रहा था।

बाकायदा कामता प्रसाद पर केस चलने लगा। पेशी पर पेशी होने लगी। इधर से कोई गवाह न गुजरा, उधर से दसियों गवाह थे। जुम्मन मियाँ के बेटे सुलेमान की गवाही सुन कर मजिस्ट्रेट को पूरा यकीन हो गया कि सारी खता कामता प्रसाद की है, सीताराम पर भारी अत्याचार हुआ है।

वकील ने हताश भाव से कहा—"भाई, मैं क्या करूँ, मैंने बहुतेरी ताक़त लगायी। तुम्हारा बचना मुश्किल ही है। सजा होगी शायद।"

जाने कैसे क्या हुआ कि फैसले में कामता प्रसाद साफ छूट गया। तीनों गुण्डों को दो-दो महीने की सजा हो गयी, सीताराम पर जुर्माना हुआ और हर्जाने की नालिश का अधिकार मिला दूसरे पक्ष को।

कामता प्रसाद अचरज से मरा जा रहा था। क्या यह फैसला भी उसी शुभ-चिन्तक की दया का परिणाम है? कहाँ है वह दयालु? एक बार उसे देख पाता, एक बार उसके चरणों में शीश झुकाता अपना। पर वह दयालु सामने न आया। सामने आया सीताराम। विचारों में खोया कामता प्रसाद अपना केमरा ठीक कर रहा था। आहट पाकर सिर जो उठाया तो सामने कुरसी पर सीताराम बैठा था शान्त मुद्रा में। जाने कैसी दबी-दबी-सी आवाज में कहने लगा—"तुम्हारी जीत हो गयी, मैं हार गया। बधाई देने आया हूँ, तहे दिल से मुबारकबाद दे रहा हूँ। भगवान् ने गीता में कहा है—धर्म की विजय होती है अन्त में। भगवान् तुम्हें सलामत रखें। इसी तरह हमेशा अपने धर्म पर डटे रहना। मैं बड़ा अधम हूँ, मेरी जात से तुम्हें बड़ी तकलीफें मिली हैं। माफ कर सको तो कर देना। तुमसे एक प्रार्थना करने आया हूँ। मानोगे?"

"कहिये।"

"तुम्हारी डिग्री हो गयी है मुझ पर। हर्जाने का सारा रुपया भरना होगा मुझे और जुर्माना भी देना है। पर भाई, भगवान् साक्षी है, मेरे पास एक पैसा नहीं है, कत्तई कंगाल हो गया हूँ और रुपया न भरूँ तो फौरन जेल हो जायेगी मेरी। पर तुम अगर चाहो तो मुझे बचा सकते हो।"

"बतलाइये, मैं कैसे बचा सकता हूँ आप को।"

सीताराम ने करुणा-प्रार्थी हो कर कहा—"मेरे पास अब कुछ नहीं बचा है। दो-चार बरतन, मैं और केमरा है मेरा—सिर्फ केमरा रह गया है। तो भाई, तुम मेरा केमरा रख लो अपने पास, रुपयों के एवज में। मैं कोई छोटी-मोटी नौकरी कर के धीरे-धीरे तुम्हारा सारा रुपया चुकता कर दूँगा। मेरा यकीन करो कामता प्रसाद, मेरी इतनी प्रार्थना मान लो, जेल मत भेजो मुझे। इस बेइज्जती से मेरी मौत हो जायेगी। ईश्वर ने तुम्हारी रक्षा की है। अब तुम मेरी रक्षा कर लो।"

सहसा कामता प्रसाद उठ कर खड़ा हो गया और आलमारी खोल कर जाने क्या खोजता रहा, फिर कुछ कागज सीताराम के आगे रख शान्त स्वर में कहने लगा—"ईश्वर ने नहीं, इन कागज के टुकड़ों ने मेरी रक्षा की है अब तक। मैं आप की बात मान लूँगा। बस, मेरी एक ही शर्त है, इन कागजों को लिखने वाला कौन है, पता लगा कर मुझे बतला दीजिये। एक बार अपने उस हितकारी को देख तो लूँ इन आँखों से। अन्दाज लगाइए कुछ, आखिर किस ने लिख कर भेजी हैं मेरे पास ये इबारतें। आप को उसने भले ही हानि पहुँचायी, पर मेरी रक्षा हर बार उसीने की है। बोलिए, वह आदमी कौन है?"

सीताराम उन कागजों को देर तक देखता रहा, फिर उसने धीरे से कहा—"मैं उस आदमी को जानता हूँ।"

"कौन है वह? क्या नाम है उसका? कहाँ रहता है?"

सीताराम पल भर खामोश रहा, फिर उसने कामता प्रसाद की उत्कण्ठा भरी आँखों में अपनी शान्त आँखें डाल कर कहा धीरे से मुस्करा कर—"ये पर्चे मैंने ही लिखे हैं।"

"आप ने ? आप ने ही ये पर्चे लिख कर मेरी दूकान में डाले थे ?" कामता प्रसाद मानो आसमान से नीचे गिरा, उसे विश्वास न हुआ जैसे।

"हाँ भाई, ये पर्चे मैंने ही लिखे थे। कामता प्रसाद, हर आदमी की दो शक्लें होती हैं—हर आदमी राक्षस होता है और हर आदमी देवता। मेरा एक दोस्त है—इस शहर का मशहूर गुण्डा, सुलेमान खाँ, और उसकी भी दो शक्लें हैं। अपने देवता वाले रूप में वह मेरी सहायता करना चाहता था और तुम्हारे नाश के लिए उसका राक्षस रूप था। पहले दिन जब उसने तुम्हारे स्टुडिओ को जलाने की तरकीब मुझे सुनायी तो मेरा राक्षस बड़ा प्रसन्न हुआ—बड़ा प्रसन्न हुआ। पर सुलेमान चला गया तो अँधियारी रात के सन्नाटे में मेरा देवता फूट-फूट कर रोने लगा। यह देवता जानते हो, कौन था ? यह आर्टिस्ट सीताराम था। और तुम स्वयं एक आर्टिस्ट हो कामता प्रसाद, तुम तो जानते हो, एक सच्चा आर्टिस्ट सबका भला चाहता है, सारे संसार का कल्याण चाहता है। तो भला कोई आर्टिस्ट किसी दूसरे आर्टिस्ट के नाश की बात सोचेगा ? एक आर्टिस्ट से क्या कभी यह मुमकिन है कि वह अपने हमराही का गला काटे ? अगर ऐसा हो तो वह आर्टिस्ट हरगिज नहीं है—इंसान हो सकता है।

कामता प्रसाद पलक रोक कर सीताराम की ओर निहारता रहा।

सीताराम ने आगे कहा—"बस, मेरे आर्टिस्ट ने यह पहला पर्चा लिख कर तुम्हें सचेत कर दिया और तब से फिर बराबर राक्षस सीताराम अपने दोस्त सुलेमान के साथ तुम्हारी बरबादी के मंसूबे बनाता रहा और आर्टिस्ट सीताराम मौका पाते ही तुम्हें खबर देता रहा। बोलो, अब यकीन आया ?"

कामता प्रसाद ने सूखी जुबान से पूछा—"केस का यह उल्टा फैसला कैसे हुआ ?"

सीताराम ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—"उसी तरह हुआ। मैंने तुम्हें बतलाया न ? राक्षस सीताराम ने दोस्त के सुझाव पर ऐसा जाल फेंका था कि तुम बच नहीं सकते थे, पर आर्टिस्ट सीताराम से आखिरकार रहा नहीं गया। आर्टिस्ट सीताराम फैसला होने से ठीक एक दिन पहले, मजिस्ट्रेट की कोठी पर भागा-भागा गया और उनसे सारा सच्चा वाकया बयान कर दिया और उनके पैर पकड़ लिये कि—कामता प्रसाद को बचा दीजिए। उसे सजा हो गयी अगर तो मैं जहर खा कर सो रहूँगा। मजिस्ट्रेट साहब से मेरी पुरानी जान-पहचान है। हँसने लगे मेरी आँखों में आँसू देख कर और कहने लगे—"तुम पर जुर्माना हो जायेगा।" "जुर्माना मैं दूँगा हुजूर।" बोले—"हर्जाने की नालिश होगी फिर।" मैंने तपाक से कहा—"वह भी भुगत लूँगा। कामता भाई को बचा दीजिये किसी तरह, यही बिनती है।" और तुमने देखा हो, मजिस्ट्रेट साहब कैसे रहमदिल हैं। सब मान गये और तुम्हें बाइज्जत छोड़ दिया।

कामता प्रसाद बिल्कुल अवाक् हो गया था जैसे। सीताराम कहने लगा—"आज मेरा जी कितना हलका है, कह नहीं सकता। भगवान् ने मुझे जाने कितने भारी पाप से बचा लिया। मान लो, तुम्हें अगर कुछ हो ही जाता तो फिर मैं भला क्या करता। मेरा आर्टिस्ट सुसाइड (आत्महत्या) कर लेता और दुनिया में बस फिर राक्षस सीताराम रह जाता और ज्यादा गन्दगी फैलाने के लिए। तो तुम मेरी बिनती कबूल कर रहे हो न ? केमरा मैं आज शाम को ही तुम्हारे पास रख जाऊँगा और छः महीने में हो, साल भर में हो—तुम्हारा पूरा-पूरा रुपया अदा कर के ही केमरा उठाऊँगा। पर भाई साहब, केमरा मेरा जरा हिफाजत से रखना। सच मानो, उसमें मेरे प्राण बसते हैं। अपने प्राणों को गिरवी रखूँगा, यही समझो। और रात वाली गाड़ी से आज मैं राजघाट

जा रहा हूँ जरा। जाने क्यों, गंगा-स्नान करने की प्रबल इच्छा हो रही है मेरी। अच्छा तो भाई, अब मैं चलूँ। नमस्कार।''

तीसरे दिन सूरज डूबे सीताराम गंगा-स्नान करके लौटा तो घर में घुसते ही पड़ोस में रहने वाला दर्जी रहमतुल्ला पीछे आ खड़ा हुआ। दर्जी कुछ बहरा था, चिल्ला कर बोला—''गंगा नहा आये उस्ताद ? लो यह चाभी सँभालो और खत लो अपना। पड़ोसी कामता प्रसाद दे गये हैं, बाहर जाते वक्त।''

काँपते हाथों से लालटेन जला कर सीताराम ने वह चिट्ठी खोली। कामता प्रसाद ने लिखा था—''आप ने मेरी आँखें खोल दी हैं। आप वाकई रायल आर्टिस्ट हैं। मैं तो अब तक महज एक दूकानदार था। अब मैं भी एक आर्टिस्ट बनने की कोशिश करूँगा। और आपका यह कहना उम्र भर नहीं भूलूँगा कि—एक सच्चा आर्टिस्ट सारे संसार का कल्याण चाहता है—सबका भला चाहता है और एक आर्टिस्ट किसी दूसरे आर्टिस्ट के नाश का कारण कभी नहीं बनता।

अपना स्टूडिओ आप को सौंपे जाता हूँ—हमेशा-हमेशा के लिए। मुझे आशीर्वाद दीजिए, मैं भी कभी आपके जैसा आर्टिस्ट हो सकूँ।''

●

रस-बूँद

पछाँही गाँव था। आबादी काफी थी और शहर से सीधा सम्बन्ध था। मोटर, लारी, इक्का, ताँगा बीच से होकर गुजरते थे, पक्की सड़क लगी थी। सब चीजें मिलती थीं। आटा-दाल, मसाले, मेवे, कपड़े, बिसातखाने सभी की दूकानें थीं, मिठाई भी बनती थी।

मिठाई की दूकान गंगासहाय की थी। पहले बाप बैठते थे। बड़ा पैसा पैदा किया उन्होंने। पक्का मकान बनवा लिया। बाप मर गये, तब से गंगासहाय दूकान चला रहा है।

वह बाप का अकेला है, उसका बेटा भी अकेला है। बेटा मदरसे में पढ़ता है। उसे सब "लल्ला" कहते हैं, बहुत लाड़-प्यार है।

लेकिन कुनबा बहुत बड़ा है। कुनबा—यानी चाचा-ताऊ, चचेरे-तयेरे, चाची-ताई, बुआ-जीजी, भतीजे-भतीजी।

उनमें कुछ अमीर हैं, कुछ गरीब हैं। यह अमीरो-गरीबी पास-पास रहने से और भी स्पष्ट हो उठती है। दिन-रात, चौबीसों घण्टे सब कोई महसूस करते हैं, अमीर अपनी अमीरी और गरीब अपनी गरीबी। यह अमरी-गरीबी शाश्वत नहीं है। पहले तो सब एक ही घर के थे—एक-सा ही खाते-पीते, पहनते थे। एक दिन जो चतुर थे उन्होंने अपना कर्तव्य पहचान लिया। वे अमीर हो गये। मूर्ख लोग एकता और समानता को पकड़े रहे। वे अब गरीब हैं। गंगासहाय के दादा मूर्ख न थे, गंगासहाय अमीर हैं—गंगासहाय का लल्ला भी अमीर है।

मूर्खों में एक थे लेखराज। उनका बेटा फल भुगत रहा है, उनका नाती अभी से गरीब है। उमर उसकी मुश्किल से आठ-नौ साल की होगी, लेकिन इससे क्या? वह गरीब बन गया है।

वह भी अपने बाप का अकेला है, उसकी माँ भी उसका लाड़-प्यार करती है। रामचरन नाम है—"रामचन्ना" कह कर सब पुकारते हैं। केवल माँ लल्ला कहती है। उसका मकान पुराने खण्डहर के बीच बूढ़े भिखारी की तरह खड़ा है। उसके बाप की दूकान नहीं है। बाप नौकर है शहर में किसी की दूकान पर।

जाड़ा उतर रहा था। उस दिन मदरसे की छुट्टी थी। लड़के मजे में इधर-उधर घूम रहे थे। लल्ला के अनेक संगी-साथी हैं। रमचन्ना भी दर्जे में साथ पढ़ता है, भाई लगता है। भाई है तो क्या हुआ—उसका पक्का मकान है, उसके बाप की दूकान है, उसके पास ऐसे कपड़े हैं? लल्ला उससे दोस्ती नहीं रखता। उसकी अम्माँ ने मना कर दिया है, अलग रहा करो इससे। उसे दोस्तों की क्या कमी है! उसकी मीठे की दूकान है। बाप से माँग कर चाहे किसी दिन सबको मीठा बाँट देता है। सब साथी कृतज्ञ हैं।

पास की गली में "इक्की-दुक्की" खेली जा रही थी। लल्ला सरदार था। सिरके से बासी रोटी खा कर रमचन्ना भी घूमता आ पहुँचा। खेल दुबारा शुरू हो रहा था। लल्ला से घिघिया कर कहा, "भैया, हमें भी खिला लो।"

वह लल्ला से "भैया" ही कहता है, अम्माँ ने कह दिया है कि नाम कभी मत लेना।

लल्ला ने कहा, "भाग जा कनेटा! तुझे नहीं खिलाऊँगा।"

खेल शुरू हो गया। रमचन्ना खड़ा देखता रहा।

पर तीन-चार मिनिट पीछे ही विघ्न पड़ गया। बेईमानी की थी लल्ला ने, विपक्षी लड़का बिगड़ गया। लल्ला ने कहा, "तो मत खेलो!" वह खेल रुक गया।

एक ने सोच कर कहा, "अच्छा, 'घोड़ी-घोड़ी' खेला जाय।"

"लेकिन पहले घोड़ी कौन बनेगा?"

"अरे, रमचन्ना जो है !"

लल्ला ने कहा, "तुम अगर घोड़ी बनो पहले तो तुम्हें खिलायेंगे।"

रमचन्ना ने कहा—"फिर मैं भी चढ़ूँगा।"

लल्ला ने कहा, "हाँ, चढ़ना।"

रमचन्ना घोड़ी बन गया। और लड़के बारी-बारी से उसकी पीठ पर बैठ कर गेंद उछालने लगे। किसी से भी गलती न हुई। रमचन्ना उसी तरह झुका रहा, सब को पीठ पर चढ़ाता रहा। अन्त में लल्ला की बारी आयी। वह रमचन्ना की पीठ पर कूद कर बैठा, ठीक जिस तरह कि घोड़ी पर बैठते हैं। रमचन्ना की कमर लचक गयी। लल्ला ने उसकी खोपड़ी पर एक धौल जमायी और कहा, "बच्चू, ठीक तरह से रहो।" और गेंद उछाली। गेंद छूट गयी। लड़के ताली पीट कर चिल्ला उठे, "चोर-चोर, लल्ला चोर !"

लल्ला पीठ पर से उतर पड़ा। रमचन्ना खुश होकर अपना लाल मुँह लिये सीधे खड़ा हो गया। लल्ला पर सब से पहले वही सवारी करेगा। कूद कर बोला, "भैया, अब लचो, मैं चढ़ूँगा।"

तो लल्ला को ख्याल आया। फौरन डाँट कर कहा, "भाग जा कनेटा, मैं चढ़ूँगा ! मुँह तो देखो।"

रमचन्ना बड़ा खिन्न हुआ, चेहरा उतर गया। तब से सब को 'सवारी' दे रहा था, उसको बारी आयी तो डपट दिया।

लड़के खूब प्रसन्न हुए, बोले, "खूब सवारी मिली, खूब चढ़े हम तो।"

एक ने कहा, "अच्छा, एक बार और। अच्छा रमचन्ना इस बार बेईमानी नहीं होगी, तू बन तो जा घोड़ी।"

वह रमचन्ना का हाथ पकड़ कर उसे झुकाने लगा। रमचन्ना, रुआँसा होकर एक किनारे को हट गया।

लल्ला को बड़ा मजा आया। साथियों से कहा, "चलो, सब को पेड़े खिलायेंगे दूकान पर।"

सब लड़के चल दिये। पीछे-पीछे उदास होकर रमचन्ना भी चला।

लल्ला ने दूकान पर चढ़ कर बाप से पेड़े माँगे। फिर क्रमशः सब लड़कों को देने लगा। वह खुद मिठाई नहीं खाता। जी भर गया है खाते-खाते।

चुपके से रमचन्ना पीछे जा खड़ा हुआ था। पर उसे पेडा में हिस्सा नहीं मिला। लल्ला की इच्छा नहीं हुई। रमचन्ना सतृष्ण आँखों से देखता ही रहा। लड़के पेड़ा खाकर चले गये।....

जलेबी बनानी थी। गंगासहाय चीनी की चाशनी पका रहा था। भट्ठी सुलग रही थी और बड़ी-सी लोहे की कढ़ाही में दस-बारह सेर चीनी "बुद्-बुद्" करके फदक रही थी। जब उफान आता तो गंगा-सहाय दूध का छींटा मार देता और कड़ाही में करछुल घुमा कर लौट-पौट देता।

रमचन्ना को जाने कब से मीठा खाने को नहीं मिला है।

उसी तरह ललचाता खड़ा था और प्यासी आँखों से मिठाइयों की ओर देख रहा था।

गंगासहाय किसी काम से भीतर उठ कर गया। कढ़ाही के आस-पास रस की बूँदें टपकी थीं, टपक कर जमीन पर जम गयी थीं। रमचन्ना को नजर जा पड़ी। बढ़ गया और अँगुली से उठा कर उन बूँदों को चाटने लगा। सब चाट लीं।

गगासहाय लौट आया। उफान आ रहा था। जल्दी से करछुल से टाला, दो-चार बूँदें फिर गिर गयीं आस-पास। रमचन्ना खड़ा था। डरते-डरते गंगासहाय चाचा के सामने ही उसने अँगुली से उठा कर रस की बूँदें चाट लीं। चाचा नहीं बोले। बड़ा खुश हुआ मन में। खड़ा-खड़ा देखता था। कोई बूँद गिरती थी तो फौरन अँगुली से उठा कर चाट लेता था।

अन्त में चाशनी तैयार हो गयी। गंगासहाय ने दोनों कुंडे कपड़े से

पकड़े और कढ़ाही उतार कर नीचे धर ली। और पीढ़े पर बैठ कर उसे घोटने लगा।

रमचन्ना भी इधर आ खड़ा हुआ। शायद कोई बूँद गिरे।

गंगासहाय फिर दूकान के भीतर काम से उठ गया। रमचन्ना ललचा रहा था। चाशनी स्थिर थी, अब बुदबुदे नहीं थे। इस किनारे पर कुछ चीनी लगी थी। वह पक कर खस्ता हो गयी थी। रमचन्ना ने चुपके से छुटा कर खा ली। फिर उधर से भी छुटाई।

गंगासहाय ने आते-आते देख लिया। कुछ नहीं कहा। रमचन्ना जल्दी से खड़ा हो गया, खड़ा हो कर देखने लगा। तीन-चार बूँदें गिरीं।

चट से चाट लीं। फिर खड़ा-खड़ा देखने लगा।....

एक गाहक आ गया। गंगासहाय उसे सौदा देता रहा। रमचन्ना खड़ा रहा। वह चला गया तो फिर गंगासहाय चाशनी के पास आया। अँगुली से छू कर देखा, तार बँधता है कि नहीं। तब तक कहीं एक बूँद टपक गयी। रमचन्ना झुका और चाट ली।

कोई पास-पड़ोस में न था। अब गंगासहाय ने रमचन्ना की तरफ देखा और इशारा किया। पर रमचन्ना को विश्वास न हुआ। क्या कढ़ाही में से ले लेने को कहरहे हैं?

गंगासहाय ने फिर आँख से इशारा किया और हाथ उठा कर बताया कि इस तरह कढ़ाही की चाशनी में से रस का चुल्लू भर लो!

रमचन्ना डरता-डरता कढ़ाही के पास बैठ गया।

गंगासहाय ने उत्साहित किया, "ले!"

इस तरह चुल्लू भर कर!

तब प्रसन्न होकर रमचन्ना ने हाथ बढ़ाया। और आग की तरह जलती चाशनी में, जो देखने में शीतल लगती थी, रमचन्ना ने उत्साहित होकर अपना छोटा-सा हाथ जल्दी से डाल दिया।

चुल्लू भर रस के लिए!

पर रस नहीं ले सका। उसी क्षण जोर से चीत्कार करके चाशनी में जली अँगुलियाँ छिटकता "अरी अम्माँ री–हाय अम्माँ !" कहता घर की ओर भाग चला।

गंगासहाय ने धीरे से कहा, "साले !"

फिर वह जलेबी बनाने बैठा। ....

माँ अभी तक चक्की पीस रही थी। रमचन्ना जलन से बेकल था। घुसते ही फौरन पानी के घड़े में हाथ घुसेड़ दिया और जोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगा। माँ ने सुना तो चक्की पर से दौड़ी आयी "क्या हुआ ?"

रमचन्ना ने रोते-रोते कहा, "हाथ जल गया है मेरा।"

"कैसे जल गया ?"— माँ ने घबरा कर कहा, "देखूँ तो, कहाँ जला लाया अभागे !"

पर रमचन्ना ने नहीं बताया कि किस तरह वह जला।

माँ ने धीरे से बाँह पकड़ कर जब हाथ घड़े से बाहर खींचा तो देख कर चिल्ला उठी, "मैया री, हाय-हाय रे !" जाने कैसी कातर दृष्टि हो गयी।

रमचन्ना के पूरे हाथ पर फफोले उभर आये थे, पूरा हाथ भरा था।

करुण स्वर में पुकार कर कहा, "चाची, ओ चाची।"

सामने के घर में एक अहीरिन आ बसी थी। पुकार सुन कर वह दौड़ी आयी। माँ ने रो कर कहा, "देखो तो, जाने कहाँ पूरा हाथ जला लाया है। हाय, क्या करूँ ? क्या लगाऊँ ? आग पड़ी होगी।"

अहीरिन ने देख कर कहा, "भुन गया है बिलकुल। भला आग न पड़ी होगी !"

रमचन्ना रो रहा था। माँ ने गोदी में बैठा लिया, चुपवाने लगी और कातर वाणी से पूछने लगी, "क्या लगाऊँ चाची ? किसी तरह ठंड पड़ जाय।"

अहीरिन ने कहा, "घबराओ मत, मैं अभी चली जाती हूँ, मुराव की बारी में केला है, केले का पानी लगाओ, ठीक हो जायेगा।"....

केले का पानी लगाया, और भी अनेक उपचार किये, पर जलन बन्द न हुई। उस दिन रोटी नहीं बनी। रमचन्ना को बुखार चढ़ आया। उसे दूध पिला दिया। माँ स्वयं निराहार रही।....

रात को जब उसका फूला हाथ देख कर माँ रोने लगी तो रमचन्ना ने रोते-रोते सब घटना सुनायी।

"हाय निरदयी !"

माँ ने उसे कलेजे से लगा लिया। अरे, कौन उसके बालक को पकड़ कर जबरदस्ती हाथ जलाने को लिये जा रहा है? गरीब को इतना मत सताओ! अरे, उसके पास बदला लेने को शक्ति नहीं है, किसी से फरियाद नहीं करेगा। दया करो। उसके भी जान है, माया-ममता है।

"हाय हत्यारे !" ...

रात को दूकान बढ़ा कर जब गंगासहाय घर पहुँचा तो पत्नी को "लल्ला" की खाट के पास बैठा पाया। पूछा, "क्या कर रही हो ?"

"मेंहदी लगा रही हूँ तलवों पर।"

गंगासहाय ने अपनी खाट पर लेट कर कहा, "सँभाल कर लगाना, कहीं उसकी नींद न टूट जाय।"....

....दूर, दूसरे मुहल्ले में अधटूटी खटिया पर लेटा रमचन्ना कढ़र कर करवट बदल कर बोला, "अम्माँ !"

"बेटा !"

"नींद नहीं आती। बड़ी आग पड़ी है।

"हाय पुतुआ, मैं क्या करूँ? कैसे तेरा दुःख अपने ऊपर ले लूँ ?"

दर्द से रमचन्ना फिर रोने लगा। उसे कलेजे से लगा कर माँ भी रो उठी। बाकी सब गाँव सो रहा था।

छोटा डाक्टर

कम्पाउण्डर श्यामसुन्दर शर्मा डिस्पेन्सरी से बाहर निकला तो धूप ढल रही थी। उसने एक बार कोट की जेब में हाथ डालकर इन्जेक्शन का डिब्बा देखा फिर तीनों सीढ़ियाँ पार करके लपकता चल दिया।

बात की बात में बाजार में आ पहुँचा। पर आज उसने नजर न डाली तमोली की दूकान पर। लम्बे डग भरता आगे बढ़ा जा रहा था कि जाने किस प्रिय बन्धु ने पुकार कर कहा, 'डाक्टर, पान खाते जाओ।'

श्यामसुन्दर ने सिर घुमा कर पीछे देखा। गंभीरता से बोला, 'फुरसत नहीं है। और आगे बढ़ गया।'

हलवाई की दूकान आ गयी। हलवाई कढ़ाही आगे रक्खे बैठा किसी गाहक से हँस रहा था। उसने कम्पाउण्डर को कतरा कर जाते देखा तो गरदन ऊँची करके चिल्लाया, 'डाक्टर, ताजा खोआ भूना है। खाते जाओ थोड़ा।'

श्यामसुन्दर ने बिना उधर देखे शान्त स्वर में कहा, 'फुरसत नहीं है।' और आगे बढ़ गया।

लाला की बैठक आ गयी। मजमा इकट्ठा था वहाँ। एक जवान साधु खंजड़ी बजा कर भजन सुना रहा था। कैसी मोहक तर्ज है! पर श्याम-सुन्दर न रुका।

ननकू सुनार ने सामने से राह रोक ली और बंडी में हाथ डालता बोला, 'भैया डाक्टर, सदर से यह कागज आया है। जरा पढ़ कर बताओ कि क्या लिखा है?'

श्यामसुन्दर ने स्वर को तीव्र करके कहा, 'मुझे फुरसत नहीं है।' और आगे बढ़ गया।

अखाड़ा आ गया। तीन-चार मस्त, कसरती जवान, तेल-फुलेल लगाये बीड़ी पी रहे थे। उनके बीच में एक साथी लाल लँगोटा कसे, नङ्ग-धड़ङ्ग बैठा, तेजी के साथ लोढ़ा चला रहा था। भंग घुट रही थी। उसी ने कम्पाउण्डर को लपक कर जाते देखा तो खड़ा हो गया उठ कर और छाती पर हाथ रख कर झूम कर बोला, 'गुइयाँ, जवानी की कसम है तुझे जो बिना चढ़ाये जाय !'

पर श्यामसुन्दर ने कसम का ख्याल न किया। आगे बढ़ता-बढ़ता चिल्ला कर कहता गया, 'फुरसत नहीं है गुइयाँ !'

बाजार खतम हो गया। श्यामसुन्दर दस-बारह कदम और अधिक तेजी से बढ़ा था कि अचानक उसकी नजर दाहिनी ओर गयी। ठिठक गया। चाल एकदम धीमी पड़ गयी। फिर अनायास ही उसके पैर उधर को मुड़ गये।

राह से दस-ग्यारह गज के फासले पर पक्का कुआँ था, जिसके चारों ओर गोलाकार चौतरा बना था। चौतरे के नीचे से एक सँकरी पगडंडी दूर तक चली गयी थी और इस ओर एक कनेर खड़ा था, जिसकी लम्बी शाखाएँ हमेशा कुएँ पर छाया किये रहती थीं और जिससे दिन-रात पीले, बाजेनुमा फूल झरते रहते थे।

श्यामसुन्दर पैरों की चाप दबाता उसी कनेर तले आ खड़ा हुआ। एक बार चारों ओर दृष्टि डाली और धीरे से खाँसा।

तब जो एकाकिनी अपना घड़ा भर रही थी, चौंक कर उधर देखने लगी। उसके ओठों पर मुसकान खिल उठी। पर उसने अपने को हँसने न दिया और गोरी बाँहें फुर्ती से रस्सी को ऊपर खींचने लगीं।

श्यामसुन्दर फिर खाँसा, शायद गला ठीक करने के लिए, और मुदित मन से हौले-हौले गाने लगा—

'हम से न भरा जाय रे
राजा, तोरा पनिया....'

परन्तु पानी भरने वाली ने कत्तई ध्यान न दिया। रस्सी इकट्ठी की और पलक मारते भारी घड़ा कमर पर रख लिया।

तब श्यामसुन्दर स्वर को और मधुर करके गाने लगा—

'पतली कमरिया, भारी गगरिया,
तिरछी नजरिया, सूनी डगरिया,
अरे, हम से न भरा जाय रे, राजा....'

तब रोकते-रोकते भी गगरिया वाली की नजर इधर आ गयी और उस भोली नजर ने देखा कि श्यामसुन्दर अपनी पतली कमर पर अदृश्य भारी गगरिया और तिरछी नजरिया लिये खड़ा है। तब हँसी रोके न रुकी और सहसा बिजली-सी कौंध गयी कुँए के किनारे।

तभी एक बड़ी रूखी आवाज सुन पड़ी, 'डाक्टर!' और एक महाबलिष्ठ, लम्बा-चौड़ा, प्रौढ़ व्यक्ति आ धमका, लट्ठ हाथ में लिये।

डाक्टर को कनेर की डाल पकड़े देखा उसने तो अजीब-सी टोन में पूछा, 'क्या कर रहे हो यहाँ ?'

डाल पर नजर जमाये श्यामसुन्दर सहमी-सी आवाज में बोला—'जरा दातून तोड़ रहा था।'

लट्ठ वाले ने सिर हिला कर कहा, 'दातून फिर तोड़ लेना भतीजे! दया करके भजनलाल के यहाँ हो आओ पहिले। समझे? वहाँ तुम्हारा इन्तजार हो रहा है।'

श्यामसुन्दर ने डाल फौरन छोड़ दी और हाथ झाड़ कर बोला—'भाड़ में जाय दातून चचा! मैं चला'—

और चलते-चलते उसने एक बार दबी निगाहों से उधर देखा। दूर, सँकरी पगडंडी पर एक सुगठित देह, पानी-भरा घड़ा लिये, मन्दगति से चली जा रही थी।....

इंजेक्शन लगा कर श्यामसुन्दर ने हाथ धोये। फिर अँगौछे से हाथ पोंछता-पोंछता भजनलाल की लड़की से अकड़ कर बोला, 'यहाँ खड़ी-

खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही है ? चूहेखानी, जा, पान लगा कर ला जल्दी से !'

लड़की हँस कर भीतर भाग गयी।

बड़ा लड़का मदरसे से पढ़ कर उसी दम लौटा था। अपना बस्ता रख कर कुम्हलाया मुख लिये माँ को पुकार रहा था। श्यामसुन्दर ने खटिया पर बैठ कर उसकी ओर हाथ हिला कर कहा, 'इधर आ रे !'

लड़का सहम कर पास आ खड़ा हुआ तो श्यामसुन्दर ने आँखें चमका कर कहा, 'अबे उल्लू, पैर क्यों नहीं छूता मेरे ?'

तभी माँ निकल आयी भीतर से पान लिये।

श्यामसुन्दर ने फौरन कहा, 'भाभी, यह गधा मेरे पैर नहीं छू रहा है।'

भाभी ने लड़के को पुचकार कर कहा, 'छू लो बेटा ! अपने चाचा के पैर छू कर पालागन करो।'

आखिर लड़के ने पैर छू लिये।

श्यामसुन्दर उसकी पीठ ठोंक कर बोला, 'जीते रहो !' फिर भाभी की तरफ मुखातिब होकर कहा, 'सिर्फ सन्तरे का रस देना आज दद्दा को और कुछ नहीं। समझीं ?'

भाभी ने समझ कर कहा, 'देवर, सन्तरा कहाँ पाऊँगी मैं ?'

श्यामसुन्दर ने झट जेब में हाथ डाल कर चार सन्तरे निकाले और भाभी के आगे करके लापरवाही से बोला, 'लो, थामो ! कहाँ पाऊँगीं ! मैं मर गया हूँ क्या ? जरा माँग कर तो देखो ! खून माँगो शरीर का तो खून निकाल दूँ अपना। मैं किस लक्ष्मण से कम हूँ ?'

भाभी की आँखें सजल हो गयीं।

श्यामसुन्दर ने सन्तोष के साथ कहा, 'आज बाग का माली दे गया था ये सन्तरे। उसकी सरहज बीमार होकर आयी है। और किसी चीज की जरूरत हो तो बतलाओ भाभी !'

भाभी काँपते कंठ से बोलीं, 'मैं तुमसे कभी उरिन नहीं हो पाऊँगी देवर !'

श्यामसुन्दर ने मानों सुना ही नहीं। भजनलाल ने करवट बदल ली थी। श्यामसुन्दर ने उनसे धीरे से कुछ कहा और पैर छू कर भाभी से बोला उठते-उठते—'अब चल दिये भाभी, सलाम !'····

····फिर वही कुआँ और कनेर सामने आ गया। सूरज का गोला नीचे उतर गया था, और गाँव का चरवाहा पशुओं का झुण्ड हाँकता चला जा रहा था पीछे धूल-गुबार छोड़ता। श्यामसुन्दर घड़ी भर रुका। रुक कर सुनसान पड़े कुएँ को ताकता रहा। और गाना ओठों पर आ गया उसके—'सूनी पड़ी रे सितार !'

फिर सहसा ख्याल आया कि सितार और कुएँ में कोई सम्बन्ध नहीं है तो चुपचाप चल दिया।····

अखाड़ा आया सामने। भङ्ग छन चुकी थी और एक जोड़ छूटा था कुश्ती का। श्यामसुन्दर कूद कर चौतरे पर चढ़ गया और अपने साथी को पहिचान कर उल्लास से बोला, 'शाबाश ! उल्टी पटकन दे बेटा को !'

दूसरा आदमी एक पुरबिया था। यहाँ बड़े लाला के यहाँ नौकरी करता था। वह भी श्यामसुन्दर को भली भाँति जानता था। बहुत तगड़ा शरीर था। श्यामसुन्दर की बात से जल कर उसने जो ताकत लगायी तो श्यामसुन्दर का साथी पड़ाक-से चारो खाने चित्त जा पड़ा। पुरबिया ने उसे वहीं छोड़ श्यामसुन्दर के आगे आकर डाँट कर कहा, 'हम का तोहार दुश्मन हई सरऊ ? तनी एहर आवा। तोहू का मजा चखाय देई बेटा !' और वह लपक कर श्यामसुन्दर का हाथ पकड़ने लगा।

श्यामसुन्दर छलाँग मार कर भाग खड़ा हुआ।····

लाला की बैठक के आगे ताश जम रहा था। श्यामसुन्दर चुपके से एक किनारे बैठ गया और ताश की बाजी देखने लगा। वह ऐसे कोने पर

था जहाँ से दो आदमियों के ताश दीख रहे थे। एक के ताश देख कर दूसरे के पास सरक कर बोला, 'कर दे तुरूप चाल ! छोड़ इक्का !'

देखते-देखते आनन-फानन उसने बाजी जिता दी।

लाला खुश होकर बोले, 'इधर आओ डाक्टर !'

पर श्यामसुन्दर ने कहा, 'जनाब, अब नहीं खेलते हम। हार हो गयी तुम्हारी।' और चल दिया।····

हलवाई सुखराम अपनी दूकान पर पीनक, का मजा ले रहे थे। आँखें बन्द थीं और सिर दीवार के सहारे टिका था।

श्यामसुन्दर ने एक बार अच्छी तरह उनकी परीक्षा की। बिलकुल चैतन्य होन लगे। जूते उतार कर भीतर घुसा वह और एक दोने में चार पेड़ा लेकर बाहर सुखराम के पास आ बैठा। आनन्द से पेड़े खा लिये और दोना दूर फेंक दिया। फिर हलवाई को झकझोर कर बोला, 'सुक्खू चाचा ! ए सुक्खू चाचा !'

सुखराम ने पीनक से चौंक कर आँखें चीरीं जोर लगा कर। श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा, 'अरे, जरा पानी तो पिलाओ। बड़ा प्यासा हूँ।'

हलवाई ने होश में आकर कहा, 'कुछ मीठा दूँ ? पेड़ा दूँ ? ताजे बने हैं।'

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से उत्तर दिया, 'आज एकादशी है चाचा ! निर्जला व्रत हूँ।'

लोटा भर पानी पीकर तमोली की दूकान पर आ खड़ा हुआ। दो बीड़े दाबे ठाठ से, सुरती डाली चार पत्तो, और कैंची की सिगरेट सुलगा कर तमोली से बोला, 'तुम्हारी जोरू तो अब ठीक है न ?'

तमोली हाथ जोड़ कर बोला, 'सब आपकी दया है सरकार ! चूना और दूँ ?'

श्यामसुन्दर ने जरा-सा चूना और चाटा। फिर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता अपनी कोठरी में जा पहुँचा।....

डिस्पेंसरी का नौकर लालटेन जला कर देने आया तो श्यामसुन्दर खुरदरी खाट पर टाँगें पसारे लेटा था। नौकर बोला, 'बिस्तर बिछा दूँ, मालिक ! दूध आ गया है आपका। गरम हो रहा है।'

श्यामसुन्दर ने अनमने भाव से कहा, 'रहने दो भाई ! मजे में लेटा हूँ। दूध आज नहीं पीऊँगा। बच्चों को पिला देना।'

नौकर क्षण भर खड़ा रहा। फिर डरता-डरता बोला, 'नये डाक्टर-साहब आये थे अभी। आपको पूछ रहे थे।'

श्यामसुन्दर चुप रहा।

नौकर बोला, 'बड़ा तेज मिजाज लगता है मालिक ! कह रहे थे, यह घुइया क्यों बो रक्खी है यहाँ ? यह क्या तुम्हारा खेत है ?'

श्यामसुन्दर ने हँस कर पूछा, 'तुमने क्या जवाब दिया ?'

'क्या जवाब देता मालिक ? सिर झुकाये सुनता रहा। पुराने डाक्टर साहब मुझे बेटे की तरह मानते थे। इनका अभी से यह हाल है ! कैसे पार लगेगा ?'

श्यामसुन्दर ने अँगड़ाई लेकर कहा, 'तू क्यों मरा जाता है रे ? मैं तो हूँ ही। जा, भगवान् का नाम ले। खा-पी। चिन्ता मत कर लछमना ! कुछ डर नहीं है।'

पर श्यामसुन्दर स्वयं चिन्तामग्न हो गया। पुराने डाक्टर नौकरी छोड़कर काशीवास करने चले गये। अब नये डाक्टर आये हैं। कल से वे ही डिस्पेंसरी में बैठेंगे। जिन्दगी का रवैया बदलना चाहता है क्या ? कैसा व्यवहार करेंगे नये साहब ? क्या बहुत सख्त तबीयत के हैं ? क्या किसी दिन अपमानित भी करेंगे ? क्या गाली देने की भी आदत है ? होगा जी ! ईश्वर पर छोड़ो सब। एक शैर याद आ गया—

'एहसान नाखुदा का उठाये मेरी बला,
किश्ती खुदा पै छोड़ दूँ, लंगर को तोड़ दूँ ।'

श्यामसुन्दर ने दो बार इस शेर को दोहराया, फिर करवट बदल कर सोने की चेष्टा करने लगा।....

नींद का झोंका आया ही था कि जाने कौन पुकार कर जगाने लगा। यह पटवारी हरिद्वारी लाल का भतीजा था। हाथ में लालटेन और लाठी लिये सिरहाने खड़ा-खड़ा बोला, 'दाऊ के पेट में बड़े जोर का दर्द उठा है। आपको बुलाया है।'

श्यामसुन्दर बड़ा खिन्न हुआ। फिर कुछ दवा शीशे के गिलास में डाल कर उदास स्वर में बोला, 'चलो।'

पटवारी का घर बस्ती के उस छोर पर था। जुलाहों के मुहल्ले से होकर जाना पड़ता था। चारों ओर गन्दगी थी! श्यामसुन्दर लालटेन की रोशनी में जमीन देखता आगे बढ़ने लगा।

सहसा एक टूटे-फूटे दरवाजे पर उसकी दृष्टि आप ही आप जा पहुँची। अँधेरे में वह घर यों खड़ा था मानों कोई भिखारी हो, जिसके तन पर चीथड़े लटक रहे हों और हड्डियों का ढाँचा उन चीथड़ों के बीच जहाँ-तहाँ चमक रहा हो। श्यामसुन्दर अँधेरे में उस चौखट को लाँघता आगे बढ़ने लगा तो एक बार फिर उसकी आँखें पीछे को लौटीं।

पटवारी के भतीजे ने आगे से चिल्ला कर कहा, 'डाक्टर साहब, गड्ढा है यहाँ! सँभल कर आइये।'....

पटवारी जी दर्द की बेचैनी से बुरी तरह छटपटा रहे थे। श्यामसुन्दर उनके पास मूढ़े पर आराम से बैठ गया। शान्त भाव से पूछा, 'क्या खाया था आज? सूअर का गोश्त?'

पटवारी ने क्रुद्ध कर कहा, 'क्या बकते हो डाक्टर? हमने तो आज सिर्फ खिचड़ी खायी थी।'

श्यामसुन्दर ने कहा, 'खैर, जो कुछ भी खाया हो; दवा मैं ले आया हूँ। अस्पताल की नहीं, अपनी प्राइवेट है। दाम लगेगा इसका। अस्पताल की भी लेता आया हूँ। ये रहीं मुफ्त की गोलियाँ।' फिर गोलियों की पुड़िया दिखा कर बोला, 'बोलो, कौन-सी खाओगे, मुफ्त की या पैसों वाली? पैसों वाली में गारंटी है। चार मिनट लगेंगे दर्द हवा होते। मुफ्त वाली का राम मालिक है। फायदा कर भी सकती है, नहीं भी। बोलो, कौन-सी दूँ?'

पटवारी ने तड़प कर कहा, 'अरे जालिम, पैसे वाली दे।'

श्यामसुन्दर ने भतीजे से पानी मँगवाया और शीशे का गिलास गोद में रख कर बोला, 'उठिये साहब, लीजिये यह गिलास पकड़िये और तैयार रहिये। ज्यों ही पानी डालूँ, फौरन मुँह लगा दीजिये गिलास में और गटागट्ट पी जाइये।'

मालकिन भी कोने में आधा घूँघट काढ़े खड़ी देख रही थीं और भतीजा भी नजर जमाये देख रहा था। श्यामसुन्दर ने कहा, 'रेडी!' और जरा-सा पानी गिलास में छोड़ा कि भर्र-भर्र करता वह गिलास झागों से भर उठा। 'पियो जल्दी!' श्यामसुन्दर ने चिल्ला कर कहा और पटवारी जी गटागट्ट पीने लगे उन झागों को।

ठीक चार मिनट लगे। हरिद्वारीलाल का दर्द गायब हो गया। शिथिल होकर पड़े थे अब, गद्गद थे और टुकुर-टुकुर डाक्टर को देख रहे थे।

श्यामसुन्दर ने शान्त भाव से कहा, 'लाओ, निकालो! दो रुपये निकालो। तुम अपने आदमी हो, गैर से चार लेता। पान-वान कुछ है कि नहीं घर में? तुम बड़े कंजूस हो। अरे, ब्राह्मण दरवाजे पर आया है, कुछ तो सेवा-सत्कार करो!'

भतीजा थोड़ी दूर तक साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उसे लौटा दिया और जाने क्या सोचता जुलाहों के मुहल्ले में आ पहुँचा, जहाँ वह

घर खड़ा था भिखारी जैसा। क्षण भर वह उस टूटे दरवाजे पर ठिठका रहा। फिर मुनिया को आवाज देता अँधेरे में भीतर घुस आया।

एक कोने में मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी और ओसारे में बैठी मुनिया निःशब्द रो रही थी। उसके शान्त, सौम्य, सलोने मुख पर आँसुओं की धारें बह रही थीं और सारे घर में उदासी साँसें खींच रही थी दुख भरी।

श्यामसुन्दर मानो पाताल लोक में खड़ा था। मुनिया को पुकार कर बोला, 'इधर आ।' और उसका आँसुओं से धुला मुख नजदीक से देखकर कलेजे पर चोट खाकर बोला, 'रो क्यों रही थी चुड़ैल?'

बूढ़ा बाप दिन भर मजदूरी करके जो पैसा लाया था, वे कहीं राह में गिर गये। कुरते की जेब फटी थी, सो पता नहीं चला अभागे को। कल दोपहर की खाये हैं। आज सारा दिन निराहार बीता और अब कल भी निराहार बीतेगा। रोती-रोती बोली, 'मैं तो भूखी रह लूँगी, पर अब्बा से कैसे रहा जायगा?'

आँसू पोंछती बोली, 'पानी भरने गये हैं। रात में मुझे अकेली जाने नहीं दिया।'

फर्लाङ्ग भर दूर कुआँ था। वहीं से सारे जुलाहे पानी लाते थे। श्यामसुन्दर लम्बी साँस खींच कर बोला, 'थोड़ी देर पहले आ जाता तो उन्हें न जाने देता। यह ले। और दो रुपये का नोट मुनिया की हथेली पर रख कर बोला, 'पटवारी को ठग कर लाया हूँ। इनसे काम चला। मैं फिर आऊँगा।'

मुनिया फूट-फूट कर रोने लगी। दो क्षण श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा फिर प्यार से उसके आँसू पोंछ कर गद्गद स्वर में बोला, 'इस तरह दिल छोटा न कर, इस तरह आँसू न बहा। तू तो उस दिन कहती थी कि भैया, मैं दुःख में भी हँसती रहती हूँ। भूल गयी चुड़ैल? अब मत रो, अच्छा!'

जुलाहों के मुहल्ले से निकलते-निकलते श्यामसुन्दर को एक गाना याद आया तो स्वर से गाने लगा, 'मुर्गदिल मत रो, यहाँ आँसू बहाना है मना।'

यही एक मिसरा वह बराबर अपने डेरे तक गाता चला आया।

× × × ×

सुबह तड़के ही नये डाक्टर ने अपनी कुरसी पर बैठ कर यहाँ का रंग-ढंग देखा तो उन्हें बड़ा अजीब-सा लगा। सब कुछ जैसे अस्त-व्यस्त था। यहाँ तक कि रोगी भी नहीं आ रहे थे, हालाँ कि दिन काफी चढ़ आया था।

उस छोटी-सी, पुरानी, धूल-भरी डिस्पेंसरी में बैठे-बैठे उन्हें उस विशाल, स्वच्छ अस्पताल की याद आ गयी, जहाँ कुछ दिन पहले वे सरकारी डाक्टर थे।

एक अंग्रेज से झगड़ा हो गया था उनका। उसने कुछ अपशब्द कहे तो इन्होंने भी कुछ ऐसा कहा जो आपत्तिजनक था। उसी बात को लेकर केस चला। यदि उस अंग्रेज से वे माफी माँग लेते तो शायद नौकरी न जाती। पर माफी न माँगी उन्होंने और नौकरी चली गयी। राजा साहब के सामने सारी घटना हुई थी। राजा साहब ने दाद दी और यहाँ इस डिस्पेंसरी में बुला लिया।

यह डिस्पेंसरी सरकारी न थी। राजा साहब के पिता के नाम पर गरीब प्रजा के हितार्थ इसे कस्बे में खोला गया था। यह कस्बा राजा साहब की रियासत में ही था और पाँच हजार से ऊपर आबादी थी इसकी।

नये डाक्टर को रहने के लिए मकान मिला था और एक नौकर भी दिया गया था सेवा करने को। बैठे-बैठे सोचते रहे, 'यहीं रहना है मुझे! आत्म-सम्मान का यही पुरस्कार है!' सिर को झटका दिया और अपने से ही बोले, 'खैर, मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।'

तभी श्यामसुन्दर ने खाँस कर उनका ध्यान भंग कर दिया। हकला कर बोले, 'क्या है ?'

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ कर कहा, 'साहब, चन्दन लाया हूँ।'

'चन्दन ?'

'जी, असली मलयागिरि का है। लगा दूँ साहब ?'

डाक्टर साहब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन्होंने शायद ही कभी माथे पर चन्दन लगाया हो। यह आदमी बड़ा अजीब है!

श्यामसुन्दर और पास आकर अदब से बोला—'पुराने साहब रोज यहाँ चन्दन लगा कर बैठते थे। भगवान् का प्रसाद है यह। लगा दूँ साहब ? दिन भर तरावट देता रहेगा।'

डाक्टर साहब ने कुढ़ कर कहा, 'लगा दो।'

तब श्यामसुन्दर ने बहुत सँभाल कर उनके माथे पर एक सफेद चन्दन का टीका लगा दिया। फिर शीघ्रता से अपनी जेब से पुराना मटमैला दो आने वाला शीशा निकाल कर डाक्टर साहब के मुँह के ठीक सामने करके खड़ा हो गया।

'यह क्या ?'

'शीशा है साहब ! देख लीजिये चन्दन।'

डाक्टर साहब ने श्यामसुन्दर के हाथ से वह शीशा छीन लिया और दूर कोने में उसे फेंक कर अति खिन्न होकर कहा, 'आइन्दा ऐसी हरकत न होनी चाहिए। समझे ?' और दोनों हाथों से सिर पकड़ कर बैठ रहे।

श्यामसुन्दर थोड़ी देर स्तब्ध खड़ा रहा। फिर उस टूटे शीशे को उठा कर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।....

अपनी जगह पर लौट आकर वह छोटी-बड़ी शीशियों के बीच गुम-सुम होकर बैठ गया। जेब से टूटे हुए शीशे को निकाल कर देखा जैसे

कलेजा ही चिर गया हो बीच से। एक लम्बी साँस ली और निरीह भाव से सामने राह की ओर देखने लगा।

तभी पाठशाला के पंडितजी आ गये तो प्रणाम करके श्यामसुन्दर ने कुशल पूछी।

पंडित जी के मुख में सुरती भरी थी। नीचे के ओठ को ऊपर की ओर खींच कर विचित्र स्वर में बोले, 'मुझे प्रतिश्याय की सम्भावना है। श्रीमान् के यहाँ कोई 'नस्य' है?'

श्यामसुन्दर ने हाथ जोड़ कर कहा, 'पंडित जी, मैं कुछ समझ नहीं पाया। हिन्दी में कहिये।'

पंडित जी ने कहा—'नस्य का अर्थ नहीं जानते? नस्य अर्थात् हुलास।'

श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा, 'समझ गया।' और पुड़िया में हुलास देकर कहा, 'श्रीमान्, इसे यहाँ न सूँघें। छींकें आयेंगी तो यहाँ भी इस रोग के कीटाणु फैलने की आशंका है।'

पंडितजी हँसते हुए चले तो दरवाजे पर बहेरे जी से टक्कर खा गये। उसने झट चरण-स्पर्श कर लिया तो शान्त होकर बढ़ गये।

बहेरे जी मारवाड़ी बनिया था। जाने कब यहाँ आकर जम गया था। उसकी लेन-देन की कोठी थी। जेवर गिरवी रखता था गरीब गृहस्थों के, दीन किसानों के।

सेठ जी श्यामसुन्दर के अति निकट आकर हाथ जोड़ कर बोले, 'म्हारी घर वाली का पेंडू दरद करे जी, डाक्टर जी! कोन्हो चोखी-सी दवा दो।'

श्यामसुन्दर ने गम्भीर होकर कहा, 'सेठ जी, मुझे दीखता है कि भगवान् ने तुम्हारे ऊपर कृपा-दृष्टि की है। समझे?'

सेठ जी गद्‌गद हो गये। शायद आँखों में आँसू आ गये। भगवान् को स्मरण करके सिर हिला कर रुद्ध कंठ से बोले हाथ जोड़े, 'समझ गयो जी! ब्राह्मण को आशीर्वाद ब्रह्मा को वचन है।' और पास आकर

बोले, 'अब क्या करूँ डाक्टर जी ? म्हाने कहो न, खरचा की चिन्ता न करो।'

श्यामसुन्दर ने कहा, 'सुनो, मैं एक लेप देता दूँ। इसे कड़ुये तेल में मिलाकर लगवा देना, जहाँ तकलीफ हो। फिर मिलते रहना मुझ से। खूब सावधान रहने की जरूरत हैं सेठ जी, समझे ? इसमें जान-जोखिम भी है औरत को।'

सेठ का चेहरा एकदम उतर गया। व्यस्त, करुण दृष्टि से श्यामसुन्दर को ताक कर बोले, 'थारी सरन हूँ डाक्टर।' फिर काँप कर बोले, 'परदेश माँ पड़्या हूँ, महाराज ! म्हारी रक्षा करो।' और जल्दी से ब्राह्मण के पैर छू कर डबडबाई आँखें लिये खड़े हो गये।

श्यामसुन्दर ने डिबिया में लेप दिया और सेठ की पीठ ठोंक कर कहा, 'कोई डर नहीं है सेठ जी ! मैं जिसका रक्षक हूँ, उसका यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लाओ, दाम निकालो। यह तो प्राइवेट दवा है। छिपा कर रखनी होती है !'

'क्या दूँ ?', सेठ अंटी टटोल कर बोले।

श्यामसुन्दर ने अँगुलियाँ हिला कर कहा, 'पाँच रुपये। ज्यादा नहीं लूँगा।'

फिर क्रमशः रोगियों का ताँता लग गया। उसके हाथ फुरती से चलने लगे। दवायें देता गया, पट्टियाँ बाँधता गया। हँसी-मजाक करता गया हर-एक से। रह-रह कर सारा कमरा अट्टहासों और खिल-खिलाहटों से गूँजता रहा।····

ग्यारह बजे डिस्पेंसरी बन्द हो जाने का समय था, पर यह नियम शायद ही कभी पूरा हो पाता हो। अक्सर बारह बज जाते, श्यामसुन्दर को काम निबटाते-निबटाते। वही आज भी हुआ। नये डाक्टर साहब ठीक समय पर हैट लगाकर चले गये। पर श्यामसुन्दर की छुट्टी न हुई। स्टूल से उठते-उठते, बूढ़ा कुन्दन मुराव लँगड़ाता-लँगड़ाता सामने आ

खड़ा हुआ। उसकी 'परिया' पकी थी। खूब गहरा घाव हो गया था। श्यायामसुन्दर ने बड़ी सफाई से मलहम लगाकर नयी पट्टी बाँध दी और उन्मुक्त प्रसन्नता से बोला, 'दाऊ, दो दिन और आओ। बिलकुल सुखा दूँगा इस घाव को।'

बूढ़ा मुराव लाठी लेकर लँगड़ाता चला। पर उससे चला न गया। किसी तरह दो कदम घिसट कर बाहर वाला थमला पकड़ कर खड़ा हो गया। उसका वह पैर थर-थर काँप रहा था।

श्यामसुन्दर भीतर से लपक कर आया और बिना कुछ बोले उस बूढ़े को अपने कन्धों पर लादने लगा तो मुराव घबरा कर 'नाहीं, नाहीं' करने लगा। श्यामसुन्दर ने एक न सुनी। हनुमान की तरह दौड़ता चला गया, मुराव को कन्धों पर लादे।....

जवान लड़का शरम से मुँह छिपा कर भीतर घुस गया। बुढ़िया यह दृश्य देख कर 'हाय-हाय' कर उठी। बूढ़े ने सिर झुका लिया। श्यामसुन्दर ने कमर पर हाथ रख कर कहा, 'दादी, यह सामने वाली लौकी मुझे तोड़ दे। आशीर्वाद दूँगा कि नाती-पोता हो तेरे।'....

लौकी झुलाता चला आ रहा था। अपना डेरा दस कदम रहा होगा कि एक अति प्रिय मुखड़ा राह के किनारे चमक उठा। धीरे-धीरे धूल में नंगे गोरे चरण रखती चली आ रही थी नजर नीची किये, लाज का आवरण ओढ़े।

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ना रोक दिया। चारों ओर देख कर खाँसा और सिर हिला कर गा उठा—

'अकेली मति जइयो राधे,
जमुना के तीर........

राधा ओठों में मुसकान छिपाये आगे बढ़ती आयी और बिना इधर देखे श्यामसुन्दर की कोठरी में जाने लगी तो उसने स्वर को तीव्र करके गाया—

'जमुना किनारे चोर बसतु है, श्यामसुन्दर अहीर।
अकेली मति जइयो राधे, जमुना के तीर........'

और वह दौड़ता आया अपनी कोठरी की ओर। राधा किवाड़ पकड़े खड़ी थी।

आनन्द में डूब कर वह बोला, 'धन्य भाग्य मेरे! चलिये, तशरीफ रखिये।'

राधा ने किवाड़ों की ओर देखते हुए तनिक हँस कर कहा, 'हम चोर के घर काहे को बैठें? अहीर के घर में! कब से हो गये अहीर?'

श्यामसुन्दर ने आँख फैला कर कहा, 'खुदा की कसम, तुम अगर मुसलमान होतीं तो मुसलमान हो जाता। अहीर होने में क्या जाता है मेरा!'

राधा ने हँस कर कहा, 'सिवाय बातें बनाने के तुम्हें और कुछ भी आता है? यह लो अपने रुपये।'

'काहे के रुपये लायी हो राधे!'

हँस कर बोली, 'मेरा नाम मत लिया करो इस तरह। तुम कौन होते हो मुझे इस तरह पुकारने वाले? रुपये अम्माँ ने भेजे हैं। कहा है, हम मान्य का पैसा नहीं रक्खेंगे। धोती के दाम भेजे हैं। साढ़े-सात रुपये हैं। गिन लो अच्छी तरह।'

श्यामसुन्दर हथेली फैलाये क्षण भर रुपयों को देखता रहा फिर सिर उठा कर बोला, 'ढाई रुपया और दो। तुमने तेल मँगाया था। ढाई रुपये की शीशी थी। लाओ, निकालो।'

हँस कर बोली, 'वह नहीं मिलेगा। मुझे देवर की चीज लेने का अधिकार है। एक पैसा न दूँगी।'

श्यामसुन्दर सिर खुजलाने लगा।

हँस कर बोली, 'रात उस मुसल्टिया को दो रुपये यों ही थमा आये

और मुझ से तेल के दाम माँग रहे हो ! शरम नहीं लगती तुम्हें ढाई रुपल्ली माँगते ?'

श्यामसुन्दर जल्दी-जल्दी सिर हिलाता बोला, 'अब नहीं सहा जाता ! अब नहीं रहा जाता !' और अति शीघ्रता से छाती के बटन खोल कर नयन मूँद कर बोला, 'लो, निकाल लो कलेजा ! मारो खंजर ! मुनिया को बहिन मानता हूँ, सो दो रुपये दे आया। तुम्हें कलेजा दे रहा हूँ। मारो खंजर !'

किसी प्रकार हँसी रोक कर बोली, 'मैं क्या करूँगी कलेजे का ? मैं कौन हूँ तुम्हारी, जो कलेजा दिये दे रहे हो ? अभी तो तेल के दाम माँग रहे थे मुझ से !'

तभी खट-से आवाज हुई। श्यामसुन्दर ने घबरा कर अपना सीना ढँक लिया। देखा, नये डाक्टर साहब बरामदे में खड़े हैं।

राधा तनिक घूँघट खींचकर एक किनारे से निकल गयी।....

साहब सामने के नीम पर जाने क्या देख रहे थे। श्यामसुन्दर अकारण ही हाथ मलता पास खड़ा था।

साहब ने उधर मुँह किये-किये ही पूछा, 'यह औरत कौन थी ?'

'जी', हाथ मलता बोला, 'जी, इसी गाँव की लड़की है।'

'तुम्हारे पास क्यों आयी थी इस वक्त ? उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? मैं जानना चाहता हूँ।'

श्यामसुन्दर ने संक्षेप में बतलाया कि यहाँ से बहुत दूर, उसकी ननिहाल वाले गाँव में इस लड़की की शादी हुई थी। पति से श्यामसुन्दर का बचपन का परिचय है। पति के चाचा को छोड़ कर और कोई न था। सन्तानहीन और विधुर चाचा ने पुत्र की तरह उसे पाला-पोसा, विवाह किया। जवानी के नशे में चूर होकर वह कृतघ्न चाचा को दुःख देने लगा। अन्त में एक दिन भारी उपद्रव मचा कर अपनी गृहस्थी अलग करने लगा तो इस मोहमयी राधा ने चचिया-ससुर का साथ छोड़ने

से साफ इनकार कर दिया। रामधुन क्रोध के वशीभूत होकर पत्नी के साथ चाचा के अकथनीय सम्बन्ध की बात कह कर उसी रात को गाँव छोड़कर कहीं चला गया। हतभागिनी हृदय पर पत्थर रख कर पितृ-तुल्य चचिया ससुर की सेवा में लगी रही। फिर एक और बज्रपात हुआ। अपनी सब स्थावर-जंगम सम्पत्ति स्नेहशीला पुत्र-वधू के नाम करके वे चाचा जी परमधाम सिधार गये। तब से यह अनाथिनी यहाँ माँ के पास रह रही है। कहानी पूरी करके श्यामसुन्दर ने कहा, 'रामधुन मुझ से उम्र में दो-तीन मास बड़ा है इसलिए गाँव का रिश्ता मान कर'....

नये साहब ने संतोष से सिर हिला कर कहा, 'ओ, देवर-भौजाई का मामला है। तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारे बाल-बच्चे कहाँ हैं ? गाँव में ?'

'जी, मेरे गृहस्थी नहीं है।'

'क्या अविवाहित हो ?'

'जी, रँडुआ हूँ।'

'रँडुआ' शब्द सुनकर नये साहब के ओठों पर हँसी आ गयी। क्षण भर रुक कर बोले, 'जरा हमारा वाला कमरा खोलना। कुछ जरूरी कागज यहाँ भूल गया था।'

× × ×

दुपहरिया में नये साहब की बातें और कहने का ढंग बार-बार याद आता रहा। 'यह औरत इस वक्त तुम्हारे पास क्यों आयी थी ? इसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है !' और जाने कैसी एक कष्टदायिनी अनुभूति मन को कुरेदती रही। कोठरी का वातावरण गम्भीर हो गया। उसी गम्भीरता में श्यामसुन्दर सो गया।

नींद टूटी तो धूप का नामोनिशान न था। तब वह भजनलाल के इंजेक्शन की याद करके द्रुतगति से भागा।....

दरवाजे पर आकर उसने संतोष की साँस ली। एक बार पश्चिमाकाश को निहारा। 'अभी दिन डूबने में काफी देर है' सोचता हुआ जो

वह चौखट पर पैर रखने लगा तो किसी स्त्री-कंठ की आवाज सुन कर ठिठक रहा।

यह दरिद्रता के मारे, रोगग्रस्त, भजनलाल की तपस्विनी ब्राह्मणी का स्वर था। लड़के से समझा कर कह रही थी, 'बहेरे जी से कहियो कि हमें अम्माँ ने भेजा है। ये खँडुये हैं चाँदी के। इन्हें रख लीजिये और पाँच रुपये दे दीजिये। बहुत जरूरत है। कहना अम्माँ ने आप के हाथ जोड़े हैं। कहना, पाँच न दें तो चार ही दे दें। सँभाल कर ले जइयो बेटा! ले बगल में दबा ले पोटली।'

लड़का शायद बाहर को आ रहा है। श्यामसुन्दर एक कदम पीछे हट कर, दीवार की ओट में खड़ा हो गया।....

थोड़ी देर बाद वह चित्त को स्वस्थ करके चेहरे पर मुसकान लिये घर के आँगन में जा पहुँचा और स्वर को तीव्र करके पुकारा, 'कहाँ हो सुरेश की अम्माँ? ओ मेरे भाई की जोरू!'

सुरेश की अम्माँ ने भीतर कोठे से जबाव दिया, अति मीठी बोली में, 'बैठो सुरेश के चाचा! अभी आयी।'

छोटी लड़की कलावती कोने में बैठी अपनी गुड़ियों को सजा रही थी। श्यामसुन्दर उसी के पास जमीन पर जा बैठा और गुड्डे-गुड़ियों को निहार कर पूछने लगा, 'इनमें तेरा खसम कौन-सा है री?'

'हट्!', कह कर कलावती शरमा कर भागने लगी वहाँ से तो श्यामसुन्दर ने उसे प्यार से पकड़ लिया, फिर अपनी जेब से चाँदी वाले खँडुये निकाल कर बालिका की गोरी-गोरी कलाइयों में पहिना कर सुख में डूब गया। कुछ कहना चाहता था, पर कुछ कह नहीं सका।

तभी भाभी आ गयीं भीतर से और सूखे अधरों पर बरबस हँसी लाकर गुड़ियों को निहारती बोलीं, 'कोई पसन्द आ गयी हो तो जेब में रख ले जाओ। रात को अपने पास सुला लेना।'

श्यामसुन्दर ने कानों पर दोनों हाथ रख कर कहा, 'शिव-शिव, यह क्या कह रही हो भाभी ? मैं ब्रह्मचारी आदमी ठहरा। स्त्री-स्पर्श मेरे लिए पाप है। तपस्या-काल है मेरा।'

भाभी ने मानो दुखी होकर कहा, 'एक की जान लेकर बैठे हो। कुढ़-कुढ़ कर मर गयी शायद अभागिन। अब करना जीवन भर तपस्या !'

श्यामसुन्दर ने प्रसंग बदल कर कहा, 'पानी गरम किया ?····जरा इधर आओ', फिर जरा-सा आड़ में होकर बोला, 'लो ये रुपये। बहेरे जी ने पाँच ही दे दिये। लेकिन साढ़े-पाँच आना सूद लेगा। समझीं ?'

भाभी ने सकपका कर पूछा, 'तुम्हें सुरेश मिला था क्या ? कहाँ रह गया वह ?'

तभी कलावती भी आ खड़ी हुई दोनों के बीच और माँ को अपने खँडुये दिखा कर अति प्रसन्नता से बोली, 'चाचा ने मुझे दिये हैं। अब मत छीनना अम्माँ !'

श्यामसुन्दर ने साँस खींच कर कहा, 'तुम इतनी दुष्ट हो भाभी, कि जी में आ रहा है मेरे कि अभी गरदन काट लूँ तुम्हारी। तुमसे मैंने कहा था कि किसी चीज की जरूरत हो तो बतलाना। औरत जात हो न ! औरत की बुद्धि हमेशा उल्टी चलती है। लड़की के हाथों से खँडुये उतारते तुम्हें दया नहीं आयी ? तुम बड़ी बेरहम हो !—चलो, पानी लाओ।'

भाभी ने सिर न उठाया। चुपचाप पानी लेने चली गयीं।····

इन्जेक्शन लगा कर वह घर से निकलने लगा तो उसी दहलीज में भाभी ने उसका हाथ पकड़ लिया और वह पाँच रुपये वाला नोट जल्दी से उसके हाथ में ठूँसती, बोलीं, 'यह लिये जाओ देवर ! यह मैं न ले सकूँगी !'

स्तब्ध खड़े श्यामसुन्दर ने बड़ी कठिनता से पूछा, 'क्यों ?'

तब जाने किधर से आँखों में पानी भर आया। छर्-छर् करके आँसू बहाती भाभी ने काँपती वाणी में कहा, 'इतना बोझ मुझसे नहीं सहा जायगा देवर बाबू! मैं बहुत दब गयी हूँ। अब और मन भर का पत्थर रख के मेरी जान ले लोगे क्या ?'

श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा।

भाभी ने दीवार से सिर टेक कर छर्-छर् आँसू बहाते कहा, 'मैं पापिनी रोज सोचती हूँ कि आज अकेले में पैर पकड़ लूँगी देवर के और पैरों पर सिर रख कर पड़ी रहूँगी और तो कुछ नहीं है मेरे पास। कैसे मैं तुम्हारी पूजा करूँ प्राणदाता ?'

श्यामसुन्दर की पीठ पर जैसे किसी ने चाबुक मार दिया सपाक् से। तिलमिला गया। पलक मारते उसके हाथ भाभी के चरणों से जा लगे। फिर चोट खाये हुए सीने को उभार कर, मर्द होकर भरे गले से बोला, 'आज माफी देता हूँ। अब आगे अगर कभी इस तरह मेरे चोट मारी तो तुम्हारा मुँह न देखूँगा भाभी! मेरा हृदय भी तुम्हारी तरह ही रक्त-मांस का है। इस तरह अब कभी मत कुचलना इसे। रुपये रक्खो ये। तुम क्या समझती हो कि अपना पेट काट कर तुम्हें दे रहा हूँ ? अरे, ये रुपये तो आज मैंने उसी मारवाड़ी से ऐंठे हैं। ले लो, भाभी, तुम्हें मेरे सिर की कसम !'

हार कर भाभी ने आँसू पोंछते हुए नोट ले लिया तो श्यामसुन्दर 'सलाम भाभी' कह कर शीघ्रता से भाग निकला।....

फिर कहीं मन न लगा। जाने कैसी उदासी मन के चारों ओर घिर आयी थी। अन्यमनस्क भाव से शिथिल पैरों से वह जैसे अनजाने ही मुनिया के आँगन में आ खड़ा हुआ।

बूढ़े बकरीदी मियाँ अभी-अभी काम पर से लौटे थे। डाक्टर को बाहर खड़ा देख घबरा कर भीतर से खटिया लेने दौड़े।

मुनिया रसोईघर में बैठी 'बेझर' की रोटी सेंक रही थी। रोटियों की मीठी-मीठी सुगन्ध छायी हुई थी घर में। श्यामसुन्दर उसके पास आ खड़ा हुआ और आगे को झुक कर पूछने लगा, 'क्या पकाया है कलमुँही ?'

मुनिया का गोरा मुख आँच के आगे बैठे रहने से लाल हो उठा था। अलकों पर हलकी-हलकी राख जमी थी। घुटने पर सिर रक्खे हौले-हौले दोनों सुन्दर हथेलियों से रोटी बना रही थी।

ओठों पर अति मन्द मुस्कान ला कर विभोर होकर बोली, 'बथुआ का साग राँधा है।'

श्यामसुन्दर ने धीरे से पूछा, 'मुझे खिलायेगी ?'

स्नेह से आर्द्र स्वर में बोली, 'खा लो भैया !'

बकरीदी मियाँ खाट बिछा कर खड़े थे। विनय से बोले, 'आओ, बेटा ! इधर आ जाओ।'

श्यामसुन्दर ने खाट पर बैठ कर एक अँगड़ायी ली। बोला, 'बड़े मियाँ कुछ हुक्का-उक्का पिलाओ न !'

बड़े मियाँ हें-हें करके जमीन पर बैठ गये तो जैसे श्यामसुन्दर ने याद करके कहा, 'रस्सी-बाल्टी कहाँ है ? लाओ पानी भर लाऊँ।'

मुनिया ने वहीं से मीठी बोली में कहा, 'मैं भर लायी हूँ भैया !'

बड़े मियाँ ने आगे सरक कर डाक्टर के पैर पकड़ लिये कस कर। फिर सूखे खुरदरे हाथों से उन पैरों को सहलाते बोले धीरे से, 'इन्सान और फरिश्ते में फरक रहने दो बेटा ! दोनों को एक जमीन पर मत खड़ा करो। खुदा ताला मुझे हरगिज माफ नहीं करेंगे। तुम पानी भरोगे मेरा ! या परवरदिगार !'

पर श्यामसुन्दर ने ध्यान न दिया। वह फिर मुनिया के पास आ खड़ा हुआ और धीरे से बोला, 'तू ने राधा से क्यों कहा कि मैं तुझे दो रुपये दे गया था ? क्यों कहा चुड़ैल ?'

मुनिया हँसती-हँसती बोली, 'कहने को तबियत हुई। बस, कह दिया।'

'कहने को तबियत हुई !' श्यामसुन्दर ने मुँह टेढ़ा करके कहा—

'चुगलखोर !'

मुनिया उसी तरह हँसती रही।

तभी बाहर से शोरगुल की आवाज सुन पड़ी, जैसे बहुत से आदमी एक साथ दौड़ते चले जा रहे हैं।

बड़े मियाँ और श्यामसुन्दर दोनों एक साथ बाहर को लपके।

कुछ लोग बातें करते आगे बढ़ गये थे। कुछ दौड़ते आ रहे थे पीछे से। श्यामसुन्दर ने राह में खड़े होकर एक आदमी को कन्धा पकड़ कर रोक लिया और पूछा, 'क्या बात है ? क्या हुआ ?'

उस आदमी ने त्रस्तभाव से कहा, 'जमींदार हरसहाय के बाग में फौजदारी हो गयी। दो कत्ल हुए हैं।'

"किसका कत्ल हुआ ?"

आदमी ने कहा, 'यह मुझे नहीं मालूम।' और वह भीड़ के साथ दौड़ता चला गया।

श्यामसुन्दर क्षण भर अवाक् खड़ा रहा फिर जैसे चौंक कर बोला, 'बड़े मियाँ, तुम घर जाओ।' और लम्बे डग भरता वह भी बाग की ओर चल दिया।....

× × ×

रात को दस बजते-बजते एक आदमी की जान निकल गयी। दूसरा सिसक रहा था। श्यामसुन्दर पसीने से तरबतर होकर लगा रहा।

जाने किसने राय दी कि सदर ले चलो। वहाँ थाने में रिपोर्ट भी लिख जायगी, जुबानी बयान भी हो जायँगे और डाक्टर मुखर्जी हैं वहाँ, बड़े होशियार डाक्टर हैं।

बात कहते बीस लठैत चल दिये, मरणोन्मुख व्यक्ति को खाट समेत उठाये।

श्यामसुन्दर अवसन्न-सा होकर तमोली की दूकान पर आ बैठा और बारह बजे तक वहीं गुमसुम होकर धोक दिये रहा।

बहुत देर तक उसे नींद न आयी और फिर सोया तो सपना देखने लगा। इतने वर्षों के बाद जाने कैसे उस दिन, उस रात को स्वर्गीया पत्नी पास आ खड़ी हुई घूँघट डाले! श्यामसुन्दर विभोर होकर उसका घूँघट हटाने लगा। लेकिन यह क्या!—यह तो राधा है!....

सबेरे भगवान् की पूजा करके वह चन्दन वाली कटोरी सामने रक्खे बैठा रहा। पुराने वृद्ध डाक्टर की याद आ रही थी। आज इस चन्दन को कौन लगायेगा? कितनी सरलता से उसके 'स्नेह का बन्धन' टूट-टूट गया है। और तब अचानक पत्नी की याद ताजा हो उठी। रात का स्वप्न याद आया और तब उसे एक गाना भी याद आया और अनजाने हो गा उठा—

'रड़ुआ तो रोवे आधी रात,
सपने में देखी, कामिनी....'

गा ही रहा था कि 'सुर में सुर' मिलाकर एक आदमी और कान के पास आकर गाने लगा। यह अखाड़े का वही साथी था, जिसे उस दिन पुरबिया पहलवान ने पटक दिया था। श्यामसुन्दर उसे अपलक ताकने लगा। पर उसने आँखें मूँद ली थीं और कान पर एक हाथ रख कर गा रहा था—

'ना कोई पीसै वाको पीसनो,
अजी, ना कोई राँधे वाको भात री,
सपने में देखी कामिनी....'

यह साथी भी 'रँड़ुआ' था। जब गाने से जी भर गया तो सामने

की मेज पर जम कर बोला, 'गुइयाँ, रात से मेरा कान पिरा रहा है। कोई दवा डाल दो इसमें।'

श्यामसुन्दर ने उसके कान में दवा डाली। फिर वह चन्दन भी उसी के माथे पर लगा दिया।

तभी लछमना ने पुकार कर कहा, 'मालिक, आपको नये साहब बुला रहे हैं।'

नये डाक्टर की बड़ी मेज पर तीन-चार नुस्खों के कागज फैले हुए थे और रोगी सामने खड़े थे। नये डाक्टर ने रोगियों को हटा दिया और एकान्त करके श्यामसुन्दर से पूछा, 'ये 'प्रिसक्रिप्सशन्स्' तुम्हीं ने लिखे हैं न ?'

'जी,' श्यामसुन्दर ने कागजों को देखते हुए कहा।

नये डाक्टर ने पीछे को धोंक लगा कर पूछा, 'तुमने डाक्टरी की शिक्षा कहाँ पायी है ?'

श्यामसुन्दर मुँह देखने लगा।

नये डाक्टर ने एक परचा उठा कर कहा, 'इस मरीज को पेचिश है। तुमने जो दवा लिखी है वह जुलाब की है!'

दूसरा परचा उठा कर बोले, 'इस आदमी को खाँसी है! तुमने इसके लिए जो दवा लिखी है वह सिर-दर्द की है।'

तीसरा परचा उठा कर बोले, 'इस औरत को 'ल्यूकोरिया' है; यह शायद 'प्रिगनेण्ट' भी है। तुमने इसे जो दवा दी है उससे इसे 'गर्भपात' हो सकता है।'

श्यामसुन्दर सुन्न खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा, 'मैं नहीं जानता था कि तुम इस कदर मूर्ख हो।'

श्यामसुन्दर अवाक् खड़ा था।

नये डाक्टर ने अपनी कलम उठा कर कहा, 'गो आउट!....'

उस दिन फिर उसके कमरे में हँसी के फव्वारे नहीं छूटे और जल्दी-जल्दी दवायें तैयार करते श्यामसुन्दर के कानों में बराबर एक ही आवाज गूँजती रही—मैं नहीं जानता था कि तुम इस कदर मूर्ख हो।—मूर्ख ! बार-बार यही एक शब्द याद आता रहा। श्यामसुन्दर ने खिन्न होकर खाना नहीं बनाया।

फिर दुपहरिया ढलते ही वह शिथिल गात लेकर भजनलाल के यहाँ चल दिया। सारे बाजार में वही कल वाली फौजदारी और कत्ल की बात चल रही थी। सुना कि वह दूसरा आदमी भी सदर पहुँचते-पहुँचते मर गया।

श्यामसुन्दर राह में कहीं न रुका। यहाँ तक कि बाजार समाप्त हो गया और वह जगह आयी जहाँ पक्का कुँआ था, कनेर का पेड़ था और नीचे सँकरी पगडंडी दूर तक चली गयी थी।

श्यामसुन्दर नजर दौड़ाकर देखने लगा और रात के स्वप्न की तरह देख पाया कि कंधे पर रस्सी लटकाये, खाली घड़ा लिये राधा चली आ रही है उसी पगडंडी से।

पूरब की ओर किसी मुराव की झोपड़ी थी। उसकी एक दीवार छाया लिये थी। श्यामसुन्दर उसी जगह जा खड़ा हुआ और सामने से आती गरम धूल में सँभल-सँभल कर कोमल चरण रखती राधा ने पास से गुजरते हुए बिना उससे दृष्टि मिलाये ही पूछा, 'यहाँ क्यों खड़े हो बाबू जी ?'

बाबू जी न बोले। राधा ने अपना घड़ा कुएँ पर रख कर इधर बिना देखे ही कहा, 'गाना नहीं गाया ! कोई गाना याद नहीं आ रहा क्या ?'

बाबूजी न बोले।

राधा ने घड़े में रस्सी का फंदा लगा कर हौले से कहा, 'क्या कहीं से पिट कर आये हो बाबूजी ? क्यों खड़े हो यहाँ छिपे-छिपे ?'

तब जाकर बाबूजी ने एक बार खाँस कर हाथ उठा कर तर्ज से कहा, 'सुनिये राधा रानी—

जेरे दीवार खड़े हैं, तेरा क्या लेते हैं !

देख लेते हैं, तपिश दिल की बुझा लेते हैं !'

राधारानी ने शायद सुन लिया। घड़ा भर कर बोली, 'दिल की तपिश मिट गयी हो तो कुछ काम की बात कहूँ ?'

'फरमाइये !'

सिर डाले-डाले घड़े से रस्सी खोलती बोली, 'रङ्गरेजों के घर एक बच्चा अभी छत से गिर पड़ा है। पैर टूट गये हैं उसके। बेहोश है तब से। जा सको तो उसके घर तक चले जाओ !'

श्यामसुन्दर ने चमक कर कहा, 'मैं अभी जा रहा हूँ। इतनी देर बाद कह रही हो !' और वह रंगरेजों की ओर भाग निकला।

× × × ×

भोर की बेला जब वह आलमारी से शीशियाँ निकाल कर मेज पर रख रहा था, नये डाक्टर ने अपने कमरे से आवाज दी, 'शर्मा !'

श्यामसुन्दर हाथ का काम छोड़ कर भागा आया। नये डाक्टर ने अत्यन्त शान्त स्वर में पूछा, 'पाठशाला के पण्डित जी तुम से क्या दवा ले गये थे ?'

'जी, हुलास ।'

'वह हुलास था ?'

श्यामसुन्दर सिर डाल गया। नये डाक्टर ने सिर हिला कर कहा, 'काली मिर्चों की बुकनी थी न ? और उस मारवाड़ी सेठ को तुमने क्या 'लेप' दिया था ? सच बोलो।'

श्यामसुन्दर ने हकला कर कहा, 'जी, ब्लूब्लैक की स्याही थी।'

'कड़ुये तेल में मिला कर, जिससे कभी न छूटे रोशनाई, क्यों ?'

श्यामसुन्दर मेज पर हाथ टेके खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा, 'और तुमने उस सेठ से कह दिया कि उसकी औरत 'प्रिगनेण्ट' है ! क्या उस मोटी औरत को इस जन्म में कभी बच्चा हो सकता है ? क्या लिया था तुमने उससे, सच-सच बोलो !'

'जी, पाँच रुपये । साहब, वह....'

'मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता ।'—नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा, 'गो आउट !'

श्यामसुन्दर अपनी जगह आकर बिलकुल शिथिल होकर बैठ गया । पर कब तक ? धीरे-धीरे रोगी आने लगे और धीरे-धीरे वह अपने में गति पैदा करने लगा ।

देश और काल का भान भूलकर वह सिर झुकाये काम करता रहा कि समय पूरा हो गया । नये डाक्टर ने हैट उठाया और बाहर बरामदे में जा खड़े हुए तो फिर एक बार शर्मा की बुलाहट हुई । इस बार क्या सुनने को मिलेगा ?

पूछने लगे, 'तुमने कल लम्बरदार से यह कहा था कि डिस्पेंसरी में इंजेक्शन नहीं हैं ?'

'जी ।'

'लेकिन, इंजेक्शन्स तो रक्खे हैं, अभी मैंने देखे हैं । क्यों मना किया तुमने ? क्या इसमें भी कोई साजिश है ?'

'जी एक भजनलाल मुदर्रिस हैं । बहुत गरीब हैं । मैंने उनके लिए रख छोड़े हैं ।'

'भजनलाल तुम्हारा रिश्तेदार है न ! भाई लगता है ?'

'जी, नहीं, वे तो गौड़ ब्राह्मण हैं ।'

नये डाक्टर ने क्षण भर रुक कर कहा, 'लेकिन यह नियम के विरुद्ध है । किसी एक आदमी को दवा दी जाय और किसी दूसरे को वही दवा न दी जाय, आखिर क्यों ?'

'जी, लम्बरदार....'

'उसने तुम्हें कभी घूँस नहीं दी, यही न ?' नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा, 'तुम यह रवैया छो दोड़। जाओ।'····

उसकी मेज के सामने अभी तक तीन-चार आदमी और खड़े थे, दवा लेने को। उनकी ओर जलती आँखों से देख कर वह चिल्लाया, 'भाग जाओ सब ! नहीं दूँगा दवा।'

और फड़ाक्-फड़ाक् सब खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द करके अपनी कोठरी में आ लेटा।····

भरी दुपहरिया में, जब कि जमीन तवे की तरह तप रही थी, गोरे मुख पर पसीने की बूँदें लिये और मैला दुपट्टा ओढ़े मुनिया उस कोठरी के द्वार पर आ खड़ी हुई और आधी किवाड़ खोल कर उल्टे पड़े श्याम-सुन्दर को निहारती हौले से बोली, 'भैया, सो रहे हो क्या ?'

'नहीं, सो नहीं रहा हूँ मुनिया ! तू इस कुबेला कैसी आयी ?'—श्यामसुन्दर ने बिना हिले कहा।

मुनिया हौले से बोली, 'रात अब्बा के साढ़ू आये थे। बदायूँ के पेड़े दे गये हैं। मैं तुम्हारे लिए लायी हूँ।'

श्यामसुन्दर उठ कर बैठ गया। उसके ओठों पर हँसी आ गयी। मुनिया को पास बुला कर उसने गठरी खोल ली और एक पेड़े का टुकड़ा मुँह में डाल कर आँखें मूँदे बोला, 'हैं तो बढ़िया ! तूने खाये ?'

मुनिया हँस कर बोली, 'लो, कह तो रही हूँ कि मैंने छुये नहीं।'

श्यामसुन्दर ने एक पेड़ा उसे देकर कहा, 'ले खा कर देख।' और खुद भी खाता गया।

फिर श्यामसुन्दर ने जैसे याद करके कहा, 'मुनिया, तरकारी लेगी ?' और फौरन उस ओर जाकर तरकारी का बरतन उठा लाया और इधर-उधर देखकर बोला, 'दूँ किस में ?'

मुनिया एलोमोनियम का कटोरा आगे करके बोली, 'लो, इसमें दे दो भैया ! मैं कड़ुआ तेल लेने आयी थी। अब फिर ले जाऊँगी।'

तरकारी देते समय अचानक श्यामसुन्दर का पात्र मुनिया के पात्र से छू गया तो जैसे नाराज होकर बोला, 'अरी दुष्ट, मेरा कटोरा छू दिया !'

मुनिया भी मानो नाराज होकर बोली, 'क्यों झूठ बोल रहे हो भैया तो, मैं हाथ नीचा ही किये रही, तुम्हीं ने छुला दिया !'

श्यामसुन्दर प्रसन्न भाव से बोला, 'अच्छा-अच्छा, भाग यहाँ से। मुझे सोने दे।'

पर उसे फिर नींद न आयी। चित्त जैसे बहुत शान्त हो गया था और कोई चिन्ता-फिक्र न रह गयी थी उसे।

× × × ×

फिर रात हुई और फिर दिन निकला। और नयी घटनाएँ चलीं।

बाग के माली की सरहज बिलकुल चंगी हो गयी थी। उसी खुशी में माली एक बड़ा-सा कटहल तोहफे में ले आया।

श्यामसुन्दर नये साहब के पास था। माली ने वहीं दोनों के सामने वह कटहल रख दिया और सलाम करके बाहर जा बैठा।

नये साहब क्षण भर उस लम्बे-चौड़े कटहल को देखते रहे। फिर पूछा, 'यह क्या है ?'

'जी, कटहल है।'

'यह तो जानता हूँ। मैं पूछ रहा हूँ, यह आदमी इसे यहाँ क्यों रख गया है ?'

श्यामसुन्दर ने डरते-डरते कहा, 'जी, उसका मरीज चंगा हो गया है। शायद आपको भेंट देने लाया है।'

नये साहब ने सिर हिला कर कहा, 'हरगिज नहीं, मैं इस तरह की चीज लेना कत्तई पसन्द नहीं करता। इसे वापस कर दो।'

श्यामसुन्दर ने माली के दुःख की बात सोच कर डरते-डरते कहा, 'जी, यहाँ के लोग पुराने डाक्टर साहब को....'

नये डाक्टर ने बीच में ही उसे रोक कर कहा, 'पुराने डाक्टर नीच थे, इसीलिए मैं भी नीच हो जाऊँ ? हटाओ इसे ! रिश्वत की चीजें लेते तुम्हें शरम नहीं आती ? तुम नाहक ही ब्राह्मण हुए। खूब पाप कमा रहे हो !'

श्यामसुन्दर ने अपनी सारी ताकत लगा कर सिर्फ यही कहना चाहा कि पुराने डाक्टर नीच नहीं थे और वह कहने भी लगा, 'जी, पुराने डाक्टर....'

पर नये डाक्टर ने और बोलने न दिया, कागजों पर पेंसिल मार कर बोले, 'शट् अप !'

श्यामसुन्दर ने घबराकर अनजाने ही कह दिया, 'जी।'

'जी क्या ?'—कुढ़कर साहब ने पूछा।

श्यामसुन्दर और घबराया। घबरा कर जल्दी से बोला, 'जी, शट् अप्।' और फिर अपने मुँह पर हाथ रख कर तत्काल भागा।

शायद नये साहब थोड़ा-सा हँसे।....

फिर वही सुनसान दुपहरिया आ पहुँची।

श्यामसुन्दर जैसे थक कर चकनाचूर हो गया था। सब जगह जैसे पीड़ा हो रही थी। नीच, बेशरम, पापी !—क्या ?—क्या वह सचमुच ही ऐसा है ? क्या नये साहब ठीक कह रहे थे ?

जाने कहाँ-कहाँ मन भटकता फिरा, जाने क्या-क्या याद आता रहा।

इस तरह जब वह स्वप्न और जागरण के बीच की स्थिति में नयन मूँदे एकाकी पड़ा था, एक अति स्निग्ध वाणी ने पैरों के पास पुकार कर कहा, 'सरकार जाग रहे हैं कि सोये हैं ?'

श्यामसुन्दर तन्द्रालस होकर उठ बैठा और बिना राधा की ओर देखे पूछने लगा, 'कहो, क्या बात है ?'

मीठी बोली ने कहा, 'सरकार के लिए 'षट्रस व्यंजन' लायी हूँ। आपकी सास जी ने भेजा है। क्या सरकार का जी कुछ खराब है ?'

श्यामसुन्दर ने फीकी हँसी हँस कर कहा, 'लाओ, सामने रक्खो। क्या लायी हो ?'

एकादशी को व्रत का 'उद्यापन' करके राधा की माँ ने थाल भर खाद्य पदार्थ भेजे थे। श्यामसुन्दर उन मिष्टान्नों पर पूरी-कचौड़ियों पर, दही-रायते पर, एक नजर डाल कर हँसता-हँसता कहने लगा, 'अम्माँ से कहना, क्यों इस तरह बीच-बीच में मेरी जुबान खराब कर रही हैं ? सूखी रोटी और बिना छौंकी दाल-तरकारी खाने वाला आदमी एक दिन ये तर माल खा लेगा ! उसके बाद ?'

राधा ने धोती से अपने चेहरे का पसीना पोंछा। धूप में चलने से उसका शुभ्र मुख बिलकुल सिन्दूरिया हो उठा था। पतले, लाल ओठों पर मीठी मुसकान लाकर बोली, 'सरकार क्यों इस तरह तकलीफ उठा रहे हैं ? दासी को अपने पास रख लीजिये न, तन-मन से सरकार की सेवा करेगी।'

श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा, 'सो तो ठीक है। डर सिर्फ इतना ही है कि दासी के असली हुजूर आ धमके कहीं तो फिर सरकार की चाँद होगी और जूते का तला होगा रामधुन के।'

राधा मुँह में अंचल देकर हँसने लगी। फिर उसने अपने मुहल्ले की एक ऐसी ही कहानी सुनायी। श्यामसुन्दर उस कहानी को सुन कर हँसते-हँसते लोटन कबूतर हो गया।

सारा विषाद कपूर की तरह उड़ गया और शाम को वह भजनलाल के यहाँ से लौट कर अखाड़े में डट गया। आधा लोटा भाँग चढ़ायी और गुलाबी नशा लिये लाला की बैठक में आ जमा, जहाँ एक नया सँपेरा अपना बीन बजा कर लोगों को मन्त्र-मुग्ध कर रहा था।

आधी रात बीते वह नशे में धुत्त होकर जोरों से सिगरेट पीता अपने डेरे पर पहुँचा तो लछमना लालटेन और लाठी लिये खड़ा था। उदास

होकर बोला, 'मालिक, मैं आपको ढूँढ़ने जा रहा था। ममेरा भाई आया है भागता, नानी मर रही है। चला जाऊँ मालिक ?'

श्यामसुन्दर ने मस्ती से कहा, 'चला जा' और कोठरी में बैठ कर उसने आधी रात को 'षट्रस व्यंजन' छके। खाता गया और झूमता गया।····

सुबह को उसे आलस्य घेरे रहा। शिथिल हाथों से शीशियाँ झाड़ रहा था कि नये डाक्टर की पुकार सुन पड़ी, 'लछमन, ऐ लछमन !'

श्यामसुन्दर काम छोड़ कर दौड़ा आया और बोला, 'जी; वह रात अपनी ननिहाल चला गया। उसकी नानी बीमार है।'

'किससे पूछ कर गया ?'

'जी मुझसे ?'

'तुम उसे छुट्टी देने वाले कौन हो ? मेरे पास क्यों नहीं भेजा ?'

श्यामसुन्दर चुप हो गया। कोने में पानी का बाल्टा रक्खा रहता था। साहब ने उधर देखकर पूछा, 'इसमें आज पानी कौन डालेगा ?'

'जी, मैंने भर लिया है।'

तब साहब की नजर फर्श की ओर गयी और पूछा, 'यहाँ झाड़ू किसने लगायी है ?'

'जी, मैंने लगा दी है।'

साहब घड़ी भर चुप रहे। फिर स्वर को थोड़ा नीचे उतार कर बोले, 'लेकिन यह सिद्धान्त के विरुद्ध है। जाओ।'

एक घण्टे बाद फिर पुकार सुनायी दी, 'शर्मा !'

फिर श्यामसुन्दर दौड़ा आया। साहब आज फिर तीन-चार नुस्खे फैलाये बैठे थे। धोक लगा कर बोले, 'सुना तुमने ? इन जाहिलों को जो मैंने सही दवायें लिख कर दी हैं, उनसे फायदा नहीं हो रहा है। कहते हैं, वही पहले वाली दवा दीजिये !'

श्यामसुन्दर क्या जवाब दे, समझ नहीं पा रहा था। साहब ने तनिक हँस कर कहा, 'यहाँ के आदमी दुनिया के और आदमियों की तरह नहीं हैं शायद। शायद इन लोगों का दिल दाहिनी तरफ होता है। तभी न पेचिश में जुलाब की दवा फायदा करती है, खाँसी में बदहजमी की दवा लाभदायक होती है।....आल राइट!' श्यामसुन्दर को वे पर्चे देते हुए कहा, 'जाओ, वे ही उल्टी दवाएँ दो, इन उल्टी खोपड़ी वालों को।'

श्यामसुन्दर शान्त भाव से वे कागज लेकर चल दिया तो किवाड़ के पास से सुन पाया, नये डाक्टर धीरे-धीरे कह रहे हैं, 'कैसा अजीब मुल्क है! कैसे अजीब आदमी हैं यहाँ के!'

× × × ×

इसी तरह सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-विषाद और भलाई-बुराई के बीच दिन उभरते गये और रातें डूबती गयीं।

और श्यामसुन्दर की हालत धीरे-धीरे ऐसी होती गयी कि अकेला है तो अकेला है, कोई खींचकर ले गया तो चला गया। जाने क्यों उसका मन सुन्न-सा हो गया था, हँसता न था, रोता भी न था।

इसी तरह दो पखवारे बीत गये कि एक दिन फिर विचित्रता हो गयी। भजनलाल मुदर्रिस रोगमुक्त हो गये थे। उनका लड़का सुरेश सुबह तड़के-तड़के ही आकर कह गया कि आज चाचा जी वहीं भोजन करें। उनके यहाँ कथा है सत्यनारायण की। दवाखाना बन्द होने पर सीधे वहीं चले आयें।

पर श्यामसुन्दर को बिलकुल ही याद न रही। हाथ से दो रोटियाँ सेंक कर खाने बैठा था कि चिलचिलाती धूप में वह सुकुमार बालक दौड़ा हुआ आया और बोला, 'चलिये चाचा जी, पिता जी और अम्माँ अपके इन्तजार में भूखे बैठे हैं। आप खा लेगें तो हम लोग खायेंगे।'

श्यामसुन्दर ने हाथ का ग्रास रख दिया और अपराधी की तरह पूछने लगा, 'मेरे लिये सब भूखे बैठे हैं? तूने भी नहीं खाया है रे?'

लड़के ने धीरे से सिर हिला दिया। श्यामसुन्दर ने लछमना को बुलाकर कहा, 'यह सब खाना उठा ले जाओ।' और अति शीघ्रता से कपड़े पहिन कर वह बालक की अँगुली पकड़ कर लपक चला....

दुपहरिया वहीं बीती, उसी आनन्द और हर्ष से भरी गृहस्थी में। तीन बार पान खाये और दो बार सुरेश दौड़-दौड़ कर चाचा जी के लिए सिगरेट खरीद लाया।

आज उसका हृदय बहुत प्रफुल्लित हुआ। इतने हँसी के चुटकुले उसने सुनाये कि भाभी की आँखों में आँसू आ गये और सौम्य, शान्त अध्यापक भजनलाल ने धीरे से कहा, 'तुम बड़े भारी मजाकिया हो। अगर किसी नाटक कम्पनी में होते तो नाम कमा लेते।'

छोटी लड़की बराबर चाचा की गोद में लेट रही....।

धूप उतरती बेला वह उस घर से चला तो गाने की तबीयत हो रही थी। तभी नितान्त अप्रत्याशित रूप से उसने देखा कि तीसरे मकान से राधा निकल रही है। मकानों की यह पूरी कतार राधा के घर के पिछवाड़े पड़ती थी।

श्यामसुन्दर उमंग में भर कर आगे लपका। राधा सिर झुकाये चली जा रही थी। पलक मारते श्यामसुन्दर उसके निकट जा पहुँचा और सुन-सान पाकर पीछे-पीछे चलता आनन्द से गाने लगा—

'गोरी, पिछवाड़े का जाना छोड़!
ओ गोरी, पिछवाड़े का....'

जैसे चोट खाकर राधा ने पीछे घूमकर देखा और भवें सिकोड़ कर बोली, 'धिक्कार है तुम्हें!'

श्यामसुन्दर हक्का-बक्का रह गया।

पर राधा ने उसी भाव से कहा, 'लानत है तुम्हारी जवानी को!'

श्यामसुन्दर ने हकला कर केवल इतना कहा, 'क्या हुआ?'

राधा ने कहा, 'इधर आओ जरा।'

वह आड़ में उसे ले गयी और सुनाया कि पुलिस चौकी का सिपाही मुबारक अली मुनिया के पीछे पड़ा है। मुनिया छोटे लाला के यहाँ दाल दलने का काम करने आती है, तो यह पाजी सिपाही हर रोज राह में उससे भद्दे मजाक करता है। कल शाम को मुनिया को वहाँ से लौटते अबेर हो गयी। मोड़ पर अँधेरा पड़ता है। यह पापी वहाँ छिपा खड़ा था। सो मुनिया को पकड़ लिया—

कहते-कहते राधा रुक गयी। श्यामसुन्दर को काटो तो खून नहीं। राधा ने फिर रुक-रुककर कहा, 'आज वह दुखियारी मेरे पास बैठी आँसू बहाती रही। मेरा खून खौल रहा है तब से। मैं तो तुम्हारे पास ही जा रही थी। तुम तो उसके भैया हो न! बहिन की इज्जत-आबरू लुटती है तो लुटने दो! तुम अपनी जवानी पर क्यों आँच आने दोगे?'

श्यामसुन्दर थर-थर काँपने लगा।

राधा ने कहा, 'कुछ कर सको तो हामी भरो, नहीं तो मैं इसका बदला लेकर तुम्हें दिखा दूँगी, मुनिया मेरी सखी है।'

श्यामसुन्दर ने अति कठिनता से कहा, 'मैं आज जान दे दूँगा!' और पलक मारते भाग चला।

नागिन की तरह फुँकारती राधा पलल रोके श्यामसुन्दर की ओर देखती रही, जब तक वह दीखा....।

× × ×

अखाड़े में भंग छन चुकी थी और पहलवान लँगोट कस रहे थे। तभी जाने किसने दौड़े आकर खबर दी कि छोटा डाक्टर चौकी पर मुबारक अली सिपाही को जूतों से मार रहा है। तब सबसे आगे वह भागा, वह पुरबिया पहलवान....।

पुरबिया ने श्यामसुन्दर को पीछे खींच कर मुबारक अली को हाथों से ही जो धुनना शुरू किया तो उसकी साँस रुकने लगी। यह देख कर एक समझदार साथी ने पहलवान को छुड़ा लिया।

श्यामसुन्दर हाथ में जूता लिये अभी तक खड़ा बुरी तरह हाँफ रहा था। उसके सम्पूर्ण चेहरे पर रक्त उभर आया था और आँखें जल रही थीं।

मुबारक अली अर्ध-मृत होकर जमीन पर पड़ा था, और उसके मुँह से और नाक से खून निकल रहा था।

पुरबिया पहलवान ने उसके आगे होकर आँखें चढ़ा कर कहा, 'खबरदार सरऊ, अब जो कभी 'बहिनिया' की ओर ताक्यो ! जौन पटाका देब हरामी, कि तोरे आँखीं के पुतरी निकसि के नाचै लागी !'

और फिर उसने अपना चौड़ा पंजा फैलाया तो जमीन पर पड़े घायल सिपाही ने हाथ जोड़ कर कहा, 'पनाह माँगता हूँ ! खुदा के वास्ते अब मत मारो पहलवान ! मैं मर जाऊँगा।'

पहलवान मुबारक अली को घसीटता ले आया। पूरी भीड़ के सामने पहलवान ने उस पापी से मुनिया के पैरों पर सिर रखवाया।

पूरी भीड़ उस डगमग होकर जाते सिपाही के पीछे-पीछे चली गयी तो श्यामसुन्दर भीतर घर में घुस आया। मुनिया का चेहरा फक हो रहा था। चौखट पकड़े खडी थी। बड़े मियाँ डाक्टर के लिए खाट लेने दौड़े।

श्यामसुन्दर लाल आँखें लिये आँगन में खड़ा था। उसका ऐसा रूप देख कर मुनिया काँप उठी। श्यामसुन्दर उसी पर नजर जमाये था। सहसा कठोर स्वर में बोला, 'इधर तो आ !'

सहमी-सी मुनिया उसके पास आ खड़ी हुई। श्यामसुन्दर ने पलक मारते उसका जूड़ा पकड़ लिया और चिल्ला कर बोला, 'तू लाला के यहाँ क्यों काम करने गयी ?'

फल्-फल् करके मुनिया की आँखों में आँसू भर आये। पर श्याम-सुन्दर ने जरा भी दया न खायी। ताकत लगा कर जूड़ा खींचता चिल्ला कर बोला, 'जबाब दे हत्यारिन, तू क्यों काम करने गयी ?'

मुनिया की आँखों से आँसू टपकने लगे। करुण स्वर में रोती-रोती बोली—'अब्बा की नौकरी छूट गयी।,

श्यामसुन्दर का हाथ ढीला हो गया। उसने धीरे-धीरे मुनिया का जूड़ा छोड़ दिया और वहीं जमीन पर सिर पकड़ कर बैठ गया।

मुनिया की आँखों से उसी तरह आँसू टपक रहे थे। वह श्यामसुन्दर से सट कर बैठ गयी और छर्-छर् आँसू बहाती श्यामसुन्दर की बाँह पकड़ कर टूटी वाणी में कहने लगी, 'मुझे माफ कर दो भैया! मैं अब कभी बाहर न जाऊँगी। चाहे अब्बा भूखे रहें, चाहे इनकी जान निकल जाय, मैं तुम्हारी बात रक्खूँगी भैया! मुझे माफ कर दो तुम्हारे पैरों पड़ूँ!' कह कर भैया के चरणों पर अपना अधम सिर झुकाने लगी तो भैया ने उस सिर को दोनों हाथों से रोक लिया और जोर से चीत्कार करके कहा, 'मुनिया!' और दुखियारी को छाती से चिपका कर फूट कर रो उठा।

पुरबिया पहलवान जाने कब लौट आया था। उसने यह दृश्य देखा तो गद्‌गद होकर श्यामसुन्दर के आँसू पोंछता और खुद आँसू बहाता बोला, 'गुइयाँ, हमार जियरा टूक-टूक'....तभी उसका हाथ मुनिया के सिर पर जा पड़ा तो बिलकुल पागलों की तरह कह उठा, 'हाय मोर बहिनिया!' हाय मोर चिरैया!....

वह पुरबिया पहलवान उसी दिन बूढ़े बकरीदी को अपने साथ ले गया और बड़े लाला के यहाँ स्थायी रूप से एक ऐसी नौकरी दिलवा दी जिसमें काम नहीं के बराबर करना पड़ता था।....

× × ×

दो दिन हुए, नये डाक्टर खास इस्टेट में गये हुए थे। राजा साहब के बड़े भाई सख्त बीमार थे और वहाँ डाक्टरों का जमघट लगा था।

सूरज डूबते-डूबते एक चपरासी आकर खबर दे गया कि नये डाक्टर सनीचर तक न आ सकेंगे। आप सब काम सँभाले रहें।

श्यामसुन्दर अवसन्न होकर पड़ा था। न उसने फिर कुछ खाया, न बिस्तर बिछाया। अचेतन-सा हो गया था। उसी हालत में पड़े-पड़े जाने कब उसे नींद आ गयी।

पौ फटने के समय किसी ने उसे कन्धा पकड़ कर जगाया। श्यामसुन्दर एक भयंकर सपना देख रहा था। वह घबरा कर उठ-बैठा और आँखें मल कर चारों ओर निहारने लगा तो पाटी के पास राधा की अम्माँ को बैठी पाया।

राधा के टोले में जो डालचन्द मिस्त्री रहता था, उसका मँझला लड़का कलकत्ते में कहीं नौकरी करता था। वह लड़का बीस दिन की छुट्टी लेकर घरवाली से मिलने आया था। उसने कल शाम राधा की अम्माँ को यह विचित्र समाचार सुनाया कि राधा का पति रामधुन कलकत्ते में है। एक फैक्टरी में नौकरी करता है। उसने एक बंगालिन रख ली थी। पिछले महीने वह बंगालिन झगड़ा करके भाग गयी। रामधुन अब फैक्टरी की नौकरी छोड़ रहा है। वह किसी साथी के कहने से रंगून जाने की तैयारी कर रहा है।

बुढ़िया ने जल्दी-जल्दी पूरा किस्सा सुना कर कहा, 'बेटा, मुझे रात भर नींद नहीं आयी। बेटा, तुम से भीख माँगने आयी हूँ। बेटा, अपने भाई को लौटा लाओ। बेटा, रधिया का सिन्दूर चमका दो। बेटा, कलकत्ते चले जाओ। यह मैं पता लेती आयी हूँ उसका। मैंने उस अभागिन से नहीं कहा। तुम्हारे हाथ जोड़ूँ बेटा, और किसी से चर्चा मत करियो। राम जानें, क्या हो, क्या न हो।'

श्यामसुन्दर नीची नजर किये बैठा रहा। उसने एक शब्द न कहा।

बुढ़िया गिड़गिड़ा कर पूछने लगी, 'जाओगे बेटा ?'

श्यामसुन्दर ने सिर उठा कर बुढ़िया की सजल आँखों को देखा और हँस कर बोला, 'जरूर जाऊँगा। आज ही जाऊँगा। अभी इसी गाड़ी से !'

बुढ़िया की आँखों से आँसू टपकने लगे।

श्यामसुन्दर ने उत्साह से कहा, 'मैं उसे खोज निकालूँगा। मैं उसे साथ लेकर लौटूँगा। मैं उसे बाँध कर लाऊँगा। तू अब तनिक भी चिन्ता न कर अम्माँ! मैं तेरे चरणों की शपथ खाकर'····

बुढ़िया ने शीघ्रता से श्यामसुन्दर के मुख पर हाथ रख दिया और अपने आँचल से उसके पैर छू कर बोली, 'पाप में मत डुबाओ बेटा!' और रोती गयी, रोती गयी। रोते-रोती ही उसने एक रुपयों की पोटली निकाली और आगे रखकर बोली, 'मैं तुम से कभी उऋण नहीं हो पाऊँगी कन्हैया!···

इस कस्बे से रेलवे स्टेशन पाँच मील दूर था। ट्रेन की सवारियों के लिए बराबर लारी आती-जाती थी। दस बजे वाली ट्रेन कलकत्ते को ओर जाती है। सोचता-सोचता श्यामसुन्दर शीघ्रता से अपना बिस्तर तैयार करने लगा। और लारी पर चढ़ने वाला वही सब से पहिला यात्री था। लछमना सामान लिये साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उस से कहा कि 'राजा साहब की बहिन के यहाँ जा रहा हूँ। एक बीमार को देखना है।'···तीसरे दिन आधी रात को श्यामसुन्दर राधा के खोये पति रामधुन को साथ लिये यहाँ लारी से उतरा।

रामधुन को उसकी ससुराल तक पहुँचा कर श्यामसुन्दर हल्का मन लिये अपने डेरे पर पहुँचा तो शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा नीम के पेड़ की आड़ में छिपा था।····

बहुत गहरी नींद में सोया। यहाँ तक कि राह चलने लगी और धूप छा गयी चारों ओर।

लछमना ने आकर उसे जगाया और कहा, 'साहब परसों शाम ही आ गये थे।'

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से कहा, 'ठीक है। तेरी गाय बिया गयी कि नहीं?'

लछमना प्रसन्न होकर बोला, 'मालिक, आज खीस खाइये उसका। बछिया हुई है।'

श्यामसुन्दर ने कहा, 'तू भाग्यवान है लछमन!' फिर याद करके बोला, 'तू नहीं रे, तेरी घरवाली। वह बड़ी भाग्यवती है।' और तब याद करके अपने से ही मानो बोला, 'वह भी भाग्यवती है। अभागा तो सिर्फ मैं हूँ, सिर्फ मैं! और तब उसके शुद्ध मानव ने मानो अति शान्त स्वर में कहा, 'दूसरों के सुख से ही सुखी रहो, श्यामसुन्दर! मैं तुम से सत्य कहता हूँ मित्र, आदमी का अपना सुख कुछ नहीं है।' श्यामसुन्दर ने मानो श्रद्धा से सिर नत कर लिया।....

× × × ×

आठ बजते-बजते नये डाक्टर ने उसे अपने पास बुला लिया और एकान्त करके लछमना से कहा, 'किसी को भीतर मत आने दो।' फिर मेज के सामने खड़े श्यामसुन्दर से कहा, 'बैठ जाओ। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

श्यामसुन्दर स्थिर-चित्त होकर बैठा था। तब नये डाक्टर ने अपने ड्राअर से एक लम्बा कागज निकाला और श्यामसुन्दर को देकर शान्त स्वर में बोले, 'इसे पढ़ लो।'

श्यामसुन्दर ने पूरा कागज पढ़ लिया और उसे लौटाने लगा तो नये डाक्टर ने वैसे ही स्वर में कहा, 'मुझे बहुत अफसोस है कि मुझे तुम्हारे बारे में राजा साहब से सब कहना पड़ा। तुम यकीन रक्खो, तुम्हारी जगह अगर मेरा अपना लड़का होता तो उसकी शिकायत भी मैं मालिक से करता ही यह कागज तुमने पढ़ लिया है। यह पूरी लिस्ट है, तुम्हारे बेजा कामों की। तुम्हें इसके बारे में कुछ कहना हो तो कह सकते हो। कोई बात अगर मैंने असत्य लिखी हो तो बतला सकते हो। और वे श्यामसुन्दर की ओर प्रश्नमयी दृष्टि से देखने लगे।

तब श्यामसुन्दर ने धीमे स्वर में कहा, 'मुझे कुछ कहना नहीं है। आपने जो कुछ लिखा है, वह सब सत्य है।

नये डाक्टर ने कलम आगे करके कहा, 'इस पर हस्ताक्षर करो अपना।

श्यामसुन्दर ने हस्ताक्षर कर दिया।

नये डाक्टर ने उस कागज को तह करके फिर ड्राअर खोला और एक दूसरा कागज निकाल कर बोले, 'राजा साहब से आज्ञा पाकर ही मैं तुम्हें यह कागज दे रहा हूँ। और चुपचाप वह दूसरा कागज उसके सामने रख दिया।

यह श्यामसुन्दर को नोटिस थी, जिस में लिखा था कि कम्पाउंडर श्यामसुन्दर शर्मा को पहली तारीख से नौकरी से अलग किया जाता है, इन दो महान् अपराधों के कारण—(१) यह कि बिना कोई सूचना दिये, बिना आज्ञा लिए, वह तीन दिन नौकरी से गायब रहा। (२) यह कि जमीदार हरसहाय के फौजदारी के केस में उसने ढाई सौ रुपया घूँस लेकर झूठी गवाही दी।

श्यामसुन्दर ने वह कागज सँभाल कर जेब में रख लिया।

नये डाक्टर सिर झुकाये हुए बोले, 'मुझे बहुत दुःख है कि मुझे तुम्हारे लिए यह कागज लिखना पड़ा। नियम के अनुसार, मैं तुम्हें दो मास का वेतन 'एक्स्ट्रा' दिलवाऊँगा। मैंने सदर को लिख दिया है। परसों नया आदमी आ जायेगा। यह टेम्परेरी प्रबन्ध है। तुम परसों से अपने कार्य से मुक्त हो।

श्यामसुन्दर ने उसी धीमे स्वर में पूछा, 'अब मैं जाऊँ?'

जा सकते हो।....

बहुत समय के बाद, उस दिन फिर छोटे डाक्टर श्यामसुन्दर के कमरे में अट्टहास गूँजा। उस दिन वह हर एक मरीज से मजाक कर रहा था बुढ़ियों तक को नहीं छोड़ा। एक साथी ने ऐसा रंग देख

कर कहा, 'आज क्या बात है डाक्टर, बड़े मस्त हो ! गहरी छानी है क्या ?'

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा, 'बस यार, कुछ पूछो मत !....'

× × × ×

हमेशा की तरह उस दिन भी बड़ी घड़ी ने ग्यारह बजाये और नये डाक्टर ने अपना हैट उठाया। आश्चर्य की बात थी कि उस दिन श्यामसुन्दर भी रोगियों से खाली हो गया ग्यारह बजते-बजते।

नये डाक्टर बरामदे में आ खड़े हुए और शायद अकारण ही श्यामसुन्दर के कमरे की ओर उनकी दृष्टि चली गयी। जाने क्या देख रहे थे कि एक अजीब सी आवाज ने उनको चौंका दिया।

यह दस कोस दूर के गाँव का हुलासी चमार था। नये डाक्टर के काले बूटों पर लोट कर बोला, 'सरकार मेरे धुनुआ को जान बचाओ। माई-बाप, धुनुआ को कुछ हो गया तो हे बेमौत मर जाऊँगा।'

पलक मारते दो आदमी धुनुआ को डोली पर लिये आ पहुँचे। डोली के साथ करुण क्रन्दन करती बुढ़िया चमारिन आयी।

नये साहब ने एक बार ध्यान से चमार के जवान, इकलौते बेटे की परीक्षा की फिर व्यस्तभाव से श्यामसुन्दर के पास आकर बोले, 'शर्मा, आपरेशन वाली मेज ठीक करो। जल्दी !'

धुनुआ की कंठ-नली पर एक अन्तर्मुख गाँठ भयंकर रूप से फूली हुई थी। उसका श्वास बहुत धीरे-धीरे चल रहा था ! मरणोन्मुख अवस्था तक उसका बाप गाँव के उपचार करता रहा। जब कोई आशा न रही तो यहाँ लेकर भागा आया।

नये डाक्टर ने बड़ी सावधानी से उस गाँठ का आपरेशन कर दिया।

श्यामसुन्दर दत्तचित्त होकर सहायता कर रहा था।

सहसा नये डाक्टर घबरा कर पुकार उठे, 'शर्मा !'

'जी।'

नये डाक्टर ने घबरा कर कहा, 'शर्मा, घाव का मवाद भीतर चला जा रहा है। यह मवाद फेफड़े में चला जायगा। मवाद से कंठ-नली भर गयी है। अब इसकी साँस रुक जायगी।—शर्मा, यह तो गया !'

नये डाक्टर घबरा कर औजारों वाली आलमारी की ओर भागे। कोई ऐसा औजार है, कोई ऐसी पिचकारी है, कोई इस तरह की चीज है क्या ?

और मेज से गज भर दूर खड़े रह गये। आगे पैर न बढ़े।

बिलकुल स्वप्न की तरह, बिलकुल 'उपन्यास' की तरह, नये डाक्टर ने देखा कि कम्पाउण्डर श्यामसुन्दर शर्मा धुनुआ के उस घाव पर ओठ लगाये मवाद को चूस रहा है ! एक बार मुँह में भरा मवाद नीचे थूक दिया। फिर दुबारा ओठ लगा कर चूसा। फिर तिबारा।....

श्यामसुन्दर ने सँभाल कर पट्टी बाँध दी। पसीने से तर मुख लिये नये डाक्टर के पास आकर बोला, 'आप हाथ धो लीजिये।'

माथे का पसीना अँगुली से पोंछ कर तनिक-सा हँस कर बोला, 'बच गया। अब कोई डर नहीं है।'

× × ×

सारे दिन श्यामसुन्दर इधर-उधर घूमता फिरा। शाम हो गयी। रात पड़ गयी तो भी भटकता रहा।

बारह बजे वह अपनी कोठरी में लौटा। चारों ओर शान्तिदायिनी चाँदनी छायी थी। नीम का पेड़ अपनी छाया में आँखमिचौनी खेल रहा था चाँद की किरणों से।

श्यामसुन्दर अपनी कोठरी के दरवाजे पर आ लेटा। क्या हुआ ? कहाँ से यह भाव उठा ? उस पेड़ को, उस कोठरी को, उस चाँद को ताकते-ताकते मानो उस चाँद के कान हों, कह उठा, 'कल मैं जा रहा हूँ ! कल मैं चला जाऊँगा यहाँ से हमेशा के लिए !'

जीवन के दस साल इस कोठरी में, इस नीम की छाया में बीत गये। आज आखिरी रात है। कल वह जाने कहाँ होगा ?

एक भयंकर व्यथा से पीड़ित होकर वह उठ कर बैठ गया। फिर टहलने लगा।

जरा दूरपर लछमना की टीन के आगे कुछ स्फुलिंग-सा चमक उठा। श्यामसुन्दर व्याकुल हृदय लिये उधर चला आया। लछमना की आँख खुल गयी थी और वह उकड़ूँ बैठा चिलम पी रहा था। श्यामसुन्दर ने आधी रात में उसके आगे खड़े होकर कहा—लछमना, मैं सबेरे चला जाऊँगा ?

'कहाँ मालिक ?—' लछमना, ने त्रस्तभाव से पूछा।

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा, 'मुझे नये साहब ने निकाल दिया है। कल मैं यहाँ से हमेशा के लिए जा रहा हूँ।'

लछमना अँधेरे में गुम-सुम बैठा था।

श्यामसुन्दर ने प्यार के स्वर में कहा, 'लछमना, तू ने मेरे ऊपर बहुत एहसान किये हैं। तुझे कुछ भी बदले में नहीं दे जा रहा हूँ। भाई, जो कभी तेरे साथ बुरा व्यवहार किया हो, उसे याद मत रखना।'

लछमना रोने लगा।

श्यामसुन्दर ने दीर्घ श्वास खींच कर कहा, 'सो जा, बहुत रात हो गयी। रो मत लछमना !'····

····उसके संयम का बाँध टूट-फूट गया। उसने किसी से भी अपनी इस यात्रा के विषय में न कहा था। वह बात उसने अब पेड़ से कह दी, कोठरी से कह दी, लछमना से कह दी, चाँद से कह दी !

और कहाँ गयी श्यामसुन्दर की धीरता, कहाँ गयी मर्दानगी ? वह अपने आँसू न रोक सका। घुटनों से छाती दबा कर आँखों से गरम पानी बहा कर निःशब्द चीत्कार करके श्यामसुन्दर 'अगोचर से कहने लगा, 'मैं कल चला जाऊँगा !'

हाय, कहीं से सहानुभूति का एक शब्द नहीं, विदा का नमस्कार नहीं।

× × ×

....दूसरे दिन सबेरे नये डाक्टर अपेक्षाकृत जल्दी आ गये। अपना कमरा खुलवा कर भीतर आ बैठे। कुछ पढ़ रहे थे शायद कि बाहर दरवाजे पर खड़े श्यामसुन्दर ने नम्रता से पूछा, 'मैं अन्दर आ सकता हूँ !'

नये डाक्टर ने चौंक कर सिर उठाया। चेहरे पर प्रसन्नता का भाव आ गया। उसी भाव से बोले, 'आओ, आओ।'

श्यामसुन्दर ने सामने वाली कुरसी पर बैठ कर नम्रता से कहा, 'मैं आज ही जाना चाहता हूँ।'

नये डाक्टर ने कहा, 'ठीक है। और कुछ ?'

एक प्रार्थना और है, श्यामसुन्दर ने एक पोटली सामने मेज पर रख कर विनम्रता से कहा, 'यह मेरी पाप की कमाई है। जुलाहों के मुहल्ले में कोई कुँआ नहीं है। उन्हें फर्लाङ्ग भर से पानी लाना पड़ता है। मेरी अभिलाषा थी कि जुलाहों के मुहल्ले में मसजिद के पास एक पक्का कुँआ बन जाता। इसी अभिलाषा को पूरी करने के लिए इतनी सालों से घूस ले रहा था पैसे वालों से और हर महीने अपनी तनख्वाह में से दस रुपये डाल रहा था। झूठी गवाही का ढाई सौ रुपया भी इसी पोटली में है। कुल नौ सौ अड़तालीस रुपया, पौने ग्यारह आना रकम है। मेरी प्रार्थना है कि आप इसे स्वीकार करें। कभी कुँआ बन सके तो बहुत अच्छा होगा। न बन सके तो आप इस रकम को चाहे जिस तरह खर्च कर दें।

नये डाक्टर ने कहा, 'ठीक है। और कुछ ?'

श्यामसुन्दर ने अप्रतिभ हो कर कहा, 'क्या मेरी बातों पर आप को विश्वास नहीं हो रहा है ?'

डाक्टर ने गंभीर होकर कहा, 'मुझे विश्वास हैं, लेकिन शर्मा....'

'जी, साहब !'

नये डाक्टर ने उसकी आँखों में आँखें डाल कर अत्यन्त दृढ़ स्वर में कहा, 'तुम यहाँ से जा नहीं सकते !'

'जी ?'

'तुम नहीं जा सकते !'—नये डाक्टर ने मानो शिथिल होकर कहा, 'मुझे बहुत अफसोस है शर्मा, कि मैं तुम्हें कल तक पहिचान नहीं सका। मुझे बहुत खुशी है शर्मा, कि मैंने कल तुम्हें पहिचान लिया।'

श्यामसुन्दर ने कम्पित कंठ से कहा, 'आप को धोखा हुआ है साहब ! मैं सचमुच नीच हूँ, सचमुच पापी हूँ, सचमुच घूसखोर हूँ। मैं आपके साथ रहने के काबिल नहीं हूँ। आप महान् हैं।' कहते-कहते श्याम-सुन्दर की आँखें सजल हो उठीं। उन्हीं जल-भरी आँखों से नये साहब को निहारता वह करुण स्वर में बोला, 'अब मुझे जाने दीजिये। और मुझे आशीर्वाद दीजिये कि कभी मैं भी आपकी तरह 'मनुष्य' बन सकूँ—

श्यामसुन्दर का गला भर आया और दिल भर आया। वह उठ कर खड़ा हो गया और आगे को झुक कर नये साहब की चरण-रज लेने लगा तो नये साहब ने ताकत लगा कर उसे रोक लिया। फिर उसके सामने खड़े होकर उसके दोनों हाथ पकड़ कर गद्‌गद स्वर में बोले, 'मेरी ओर देखो !'

श्यामसुन्दर की आँखों से आँसू टपक रहे थे। उसने सिर उठाया। नये साहब ने काँपती जुबान से कहा, 'मेरी ओर देखो शर्मा !'

तब श्यामसुन्दर ने अपनी आँसुओं में तैरती आँखें ऊपर कीं। उन आँखों से कुछ दिखायी नहीं दे रहा था, तो भी श्यामसुन्दर जान पाया कि नये साहब की आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे हैं। उन्हीं आँसुओं के बीच नये साहब ने किसी तरह कहा, 'शर्मा, तुम्हारे बिना मैं अब जिन्दगी नहीं बिता सकूँगा। मैं तुम से विनय कर रहा हूँ शर्मा ! मैं तुम

से भीख माँगता हूँ ! कहो, 'मैं नहीं जाऊँगा !' कहो शर्मा, 'मैं नहीं जाऊँगा !' कहो !'

तब श्यामसुन्दर ने मानो बिलकुल शक्ति खो दी। रोता-रोता बोला, 'मैं नहीं जाऊँगा।'

नये साहब ने श्यामसुन्दर को कसकर छाती से लगा लिया।

लाजवन्ती

मकान के निचले हिस्से में जो युवक क्लर्क रहता था, उसकी पत्नी यशोदा ने आँगन में खड़े होकर, चिल्ला कर कहा, 'किस अन्धे ने यह कूड़ा फेंका है ?'

ऊपर से कोई कुछ न बोला । अभी घंटा-भर पहले वह आँगन बुहार कर गयी थी और अभी चारों ओर तरकारियों के छिलके छितर गये । यशोदा ने ऊपर को मुँह करके देखा, जंगले में जहाँ-तहाँ छिलके लटके हुए थे । तब फिर स्वर को ऊँचा करके कहा, 'किसकी आँखें फूट गयी थीं ?'

कि चट से ऊपर वाली ने जंगले पर धमक कर कहा, 'आँखें फूटी होंगी कहने वाली की ।'

'चोरी और सीनाजोरी ! मैं क्या डोम, चमार हूँ जो रोज-रोज तुम्हारी जूठन बटोरूँगी ? शरम नहीं आती तुम्हें जुबान खोलते ? क्यों तुमने मेरे आँगन में कूड़ा फेंका ? बाहर जाने को तुम्हारे हाथ-पैर टूट गये थे क्या ?'

ऊपर वाली ने आँखें निकाल कर कहा, 'जरा जुबान सम्हाल कर बोल, कैंची की तरह कुतर-कुतर कर रही है । कूड़ा क्या हमने हाथ से गिराया है ? बन्दर बिखेर गया । ऐसा कौन गजब हो गया, जो आसमान सर पर उठा रखा है ? मुझे ऐंठ मत दिखा, समझी ? मैं बहुत बुरी हूँ । बस अब मुँह मत खोलियो ।'

'तुम कौन खेत की मूली हो ? किस घमण्ड में हो ? तुम हो कौन मुझे रोकने वाली ? मुँह मत खोलियो ! जैसे मेरी जिठानी हों, जैसे मैं भी मनोरमा हूँ, जो डाँट फटकार सब पी लूँगी । मुँहझौंसी !'

ऊपर वाली ने सप्तम स्वर में कहा, 'अरे ओ कलमुँही ! अरे ओ डायन ।'

कि मनोरमा ने पीछे से जिठानी की बाँह पकड़ कर खींच लिया और भीतर को ले जाती, कातर होकर बोली—

'झगड़ा मत बढ़ाओ, दीदी !'

पालने में लेटी जिठानी की बच्ची जाने कब से रो रही थी। मनो-रमा दौड़ी जाकर उसे उठा लायी और बच्ची को छाती से लगाये जिठानी से पूछने लगी, 'किसकी दाल चढ़ाऊँ, दीदी ?'

दीदी का क्रोध अभी तक शान्त न हुआ था। हाथ उठा कर बोलीं, 'उस चुड़ैल की बातें सुनीं तुमने ?'

मनोरमा ने करुणा-प्रार्थी होकर कहा, 'मैंने सब सुन लिया है, दीदी, धूल डालो उनकी बातों पर।'

कि अचानक दरवाजे पर जगदम्बा के चप्पलों की आवाज हुई। मनोरमा से उसकी दृष्टि मिली, तो मुसकरा दिया। पर मनोरमा ने तत्काल मुँह फेर लिया और खिड़की पर जा खड़ी हुई। जगदम्बा भाभी के आगे आ बैठा और मुक्त प्रसन्नता से बोला, 'मुनिया के लिए ऊनी फ्राक लाया हूँ भाभी देखना छोटी तो न होगी ?'

भाभी सुन्न रहीं ! जगदम्बा ने फ्राक सामने फैलाकर कहा, 'देखना भाभी !'

पर भाभी ने फ्राक की ओर न देखा। क्रोध के स्वर में बोलीं, 'मैंने हजार बार मना किया कि ऐसे नीचों को मत बसाओ घर में, मेरी एक न मानी। बोले कि भले आदमी हैं ! अब वे ही भले आदमी आस्तीन का साँप हो रहे हैं, हमें आँखें दिखाते हैं, गाली देते हैं !'

जगदम्बा ने फ्राक की तह करते हुए पूछा, 'आज फिर लड़ाई हो गयी क्या ? कौन जीता ?'

भाभी ने कहा, 'वही चुड़ैल जीती !'

जगदम्बा ने सर हिलाकर कहा, 'तब तो डूब मरने की बात है ! एक चुड़ैल दो चुड़ैलों से जीत गयी ! तुम्हें धिक्कार है, भाभी !'

भाभी ने हँसी रोककर कहा, 'जले पर नमक मत छिड़को !'

मनोरमा ने चुपके से पति के आगे से फ्राक उठा लिया था और खुशी-खुशी बच्ची को पहना रही थी। जिठानी ने उसकी ओर देखकर कहा, 'और इस मिट्टी के महादेव को देखो कि इसका मुँह न फूटा, उल्टे मुझे खींच लायी भीतर ! कम्बख्त ने लड़ने भी तो न दिया अच्छी तरह ! जरा उस हरामजादी को मजा चखाती गाली देने का !'

जगदम्बा ने एक बार पत्नी के अधरों पर मधुर मुसकान खिली देखी और हँस कर बोला, 'अभी तुम्हारा चेला कच्चा है। जरा अभ्यास कराओ भाभी, आगे चल कर देखना, बड़ा तेज निकलेगा।'

—'मेरा चेला कच्चा ही रहे, भगवान् करें !'

भाभी ने कहा और तब जैसे उस ऊनी फ्राक की याद आयी। मुनिया पहने बैठो खेल रही थी अपनी चाची की गोदी में। घड़ी-भर उसके लाल-नीले फूल देखती रहीं, फिर नकली क्रोध से बोलीं, 'मैं कहती हूँ, तुम्हें ऊन लाने की सुधि न हुई और फ्राक फिर ले आए ! दस फ्राकें तो आ चुकीं इस कलूटी के लिए। यह मनोरमा रोज जाड़े में सिरसिराती है, ऊन ले आते तो स्वेटर बुन लेती। इस गरीब पै दया नहीं आती तुम्हें ?'

जगदम्बा ने उठते-उठते कहा, 'मेरे पास रुपये नहीं है ऊन के लिए। जिसे जरूरत हो, अपने पैसे से खरीदे ऊन।'

भाभी ने जोर से कहा, 'हाँ-हाँ, तुमने बड़ी भारी रोकड़ सौंप दी है न उसे !'

जगदम्बा ने कोई प्रत्युत्तर न दिया और चला गया बाहर।....

घंटा-भर पीछे मनोरमा ने नीचे झाँक कर देखा तो नीचे वाली के कमरों में ताला पड़ा था। शायद नदी नहाने चली गयी थी।

जिठानी को झपकी आ गयी थी और बच्ची को लिए पलंग पर सो रही थीं। मनोरमा दबे पैरों भीतर से झाड़ू उठा लायी। फिर नीचे आँगन में आकर जल्दी-जल्दी वह कूड़ा साफ करने लगी।....तभी दरवाजे की आधी खुली किवाड़ से रमिया चमारिन ने उझक कर इधर देखा और स्नेह-भरी वाणी से बोली, 'क्या कररही हो बहूजी, मैं आ तो रही थी।'....

मनोरमा न रुकी। कूड़ा बटोर कर कंडाल में डाला। फिर पाइप खोलकर हाथ धोये। फिर धोती के अंचल से हाथ पोंछती रमिया से पूछने लगी, 'चिट्ठी आयी ? क्या लिखा है ? कब आयेंगे तेरे प्रीतम ?'

रमिया की उमर मनोरमा से भी कम है। उसका 'प्रीतम' कलकत्ते मे कहीं नौकरी करता है। रमिया के पास वह चिट्ठी भेजता है, रुपये भेजता है। इस बार जाने क्या हो गया, महीने-भर से न तो चिट्ठी आयी, न रुपये आये। रमिया ने बहू जी से चिट्ठी लिखवा कर डाली थी। लिखा था, एक बार मुझे दर्शन दे जाओ।

जाने किधर से रमिया की आँखों में आँसू छलछला आये। सर झुकाये हौले से बोली, 'नहीं आयी, बहू जी।'

मनोरमा ने स्नेह में डूबकर कहा, 'ऐसे दिल छोटा न करो सखी, मैं आज और एक चिट्ठी लिख दूँगी। चाहे तुम्हारी चिट्ठी न मिली हो, चाहे किसी जरूरी काम में फँसे हों, फुरसत न मिली हो जवाब देने की।'

रमिया ने भीगी पलकों से कहा, 'मुझे ऐसा लगता है बहू जी, कि अब वे निर्मोही हो गये। मेरी माया-ममता टूट गयी सब।'...और टप्-टप् करके रमिया के आँखों से आँसू गिरने लगे तो मनोरमा का दिल भर आया। स्नेह विह्वल स्वर में बोली, 'ऐसा नहीं हो सकता। मेरा दिल कहता है, तुझे वे भूले नहीं हैं, तुझे वे कभी नहीं भूलेंगे। इतना प्यार, इतना मोह, आदमी भूल जायगा तो दुनिया उसी दिन खतम हो जायगी। रोओ मत, बहिन, रोओ मत !'

कि जाने कौन दरवाजे पर खाँसा। मनोरमा ने चौंक कर देखा तो जेठ जी भीतर आ रहे थे। वह खम्भे के पीछे छुप गयी।....

'मेरा कलम कहाँ गया?'—थोड़ी ही देर बाद जेठ ने अपने कमरे से चिल्ला कर पूछा, 'तुमने लिया था क्या?'

'लिया तो था',—जिठानी लेटी-लेटी बोलीं, 'मैं खा तो नहीं गयी, वहीं रख दिया था।'

जेठ ने झल्ला कर कहा, 'कहाँ है यहाँ कलम? लाओ, ढूँढ़कर दो।'

तब मनोरमा लजाती सकुचाती जेठ जी के कमरे में चली आयी। बेचारे आलमारी में झुके-झुके कलम खोज रहे थे। सर उठाया और जोर से बोले, 'लो, देखो तुम्हीं.....'

कि मनोरमा के मुख पर आधे खिंचे अंचल पर नजर जा पड़ी, तो प्यार से बोले, धीमे स्वर में, 'ढूँढो तो बेटी, इसी आलमारी में देखो।'

कलम जाने कैसे नीचे वाले खाने में फाइलों के पीछे जा पड़ा था। कागजों पर धूल के पर्त जमे थे। धूल सारे कमरे में थी। जाने कब से उस कमरे की सफाई न हुई थी।

फाइलें इधर-उधर करते मनोरमा के सुन्दर हाथ धूल से अट गये। पर कलम उसने आखिर ढूँढ निकाला। जेठ जी अपनी टेबिल पर सर पकड़े बैठे थे। मनोरमा ने हौले से कलम सामने रख दिया तो जैसे चौंककर बोले, 'मिल गया, बेटी? मैं कितना परेशान था!....'

दस बजे दोनों भाई जब खा-पीकर आफिस चले गये, तो मनोरमा झाड़ू लेकर जेठ जी के कमरे में जा घुसी।

शाम को लौटे, तो कमरे की काया ही पलट गयी थी। सारा कमरा जैसे बोल रहा था। देखते थे और देखते थे कि पत्नी चाय लेकर आयीं। पति की आँखों में प्यार छल-छला आया, स्नेह-भरे स्वर में बोले, 'इधर आओ, तुम्हारे हाथ चूम लूँ। आज कितनी मेहनत कर डाली। इस मनहूस कमरे को चमन बना दिया।'

तब इन्होंने भी ध्यान दिया और चारों ओर गौर से देखा और सकुचायीं; सकुचा कर बोलीं, 'मनोरमा ने किया है सब। वही लगी रही थी आज यहाँ।'

पति ने कुरसी की धोक लगा ली, साँस खींच कर आँखें मूँदे बोले, 'यही तो सोच रहा था कि आखिर इतने दिनों तक जो घटना कभी न हुई, वह यों अचानक कैसे हो गयी !'

स्वामिनी स्वर चढ़ा कर बोलीं, 'क्यों, मैंने क्या सभी तुम्हारे कमरे की सफाई की नहीं है ?'

पर स्वामी ने ध्यान न दिया। आँखें मूँदे बोले, 'एक हीरा आ गया है इस दरिद्र घर में।'....

सुबह को मनोरमा सोकर उठी, तो सिरहाने ऊन का पैकेट रखा मिला। बहुत-बहुत खुश हुई और जल्दी-जल्दी उसने अपनी आलमारी से बारह नम्बर की सलाइयाँ ढूँढ़ निकालीं। रोटी-पानी से निबट कर बुनने बैठ गयी फौरन और उसकी सुकुमार अँगुलियाँ बड़ी तेजी से एक नवजात शिशु के मोजे बनाने लगीं। रात को फिर उसने जिठानी से छुपा कर टोपा बुना सुन्दर-सा और स्वेटर भी बुन डाला फिर।

नीचे वाली के पहला भतीजा जन्मा था। वह अपने मायके जा रही थी। मनोरमा ने जिठानी से छुपा कर वे सब मोजे, टोपा और स्वेटर उसे ला सौंपे और अत्यन्त प्रसन्न हुई यह काम करके।

इस प्रकार उसका अपना स्वेटर न बना और जाड़ा सताता रहा कोमल तन-लता को और सिरसिराती रही जाड़े से कि नीचेवाली लौट आयी मायके से। रात की गाड़ी से आयी थी। भोर होते ही उसने मनोरमा को इशारे से बुलाया और भारी प्रसन्नता से अपना ट्रंक खोलकर एक सुन्दर-सी धोती निकाली और उसे मनोरमा के हाथों में देती हुई बोली, 'यह धोती तुम्हें अम्माँ ने भेजी है।'

मनोरमा वह धोती अपने माथे से छुआकर गद्गद स्वर में पूछा, 'दीदी, तुमने अम्माँ से मेरा नमस्ते कही थी न ? क्या कहा अम्माँ ने, मेरे लिये कुछ कहा ?'

नीचे वाली ने मोह से कहा, 'तुम्हें आशीर्वाद कहा है अम्माँ ने और तुम्हें देखने को पागल हो रही हैं। जल्दी ही तुम्हें बुलायेंगी। छोटे भैया का व्याह ठहर गया न, उसी में जाना पड़ेगा तुम्हें, बड़े भैया आयेंगे बुलाने। चलोगी न ?'

—'जरूर चलूँगी।'—मनोरमा ने खुशी से उछल कर कहा, 'छोटे भैया के व्याह में खूब काम करूँगी।' रात को अम्माँ के पास लेटूँगी। माँ कह कर पुकारने को मेरा जी कितना तरसता है, दीदी !'—कहते-कहते मनोरमा के नयन सजल हो उठे। पानी में तैरती आँखें लिये बोली, 'मेरी अपनी माँ नहीं हैं, तो तुम्हारी माँ भी तो मेरी अपनी माँ ही हैं।' हैं न दीदी ?

नीचे वाली ने विह्वल होकर कहा, 'मनोरमा, मैं यहाँ इस घर में आयी तो पहले दिन ही तूने मेरा दिल छीन लिया था। लगता है, अब माँ की भी तू छीन लेगी जालिम !'

'दीदी, मैं जालिम हूँ ?'—मनोरमा सर तिरछा करके पूछ रही थी कि नीचे वाली था पति आ गया बाहर से तो वह शरमा कर धोती लिए जीने की ओर भागी।

धोती वह उसने बक्स में छुपा दी। फिर दुपहरिया में जब जिठानी मुनिया से खेल रही थीं, मनोरमा दो धोतियाँ लिये सामने आ बैठी और वही सुन्दर-सी धोती दीदी के आगे फैलाकर सुनाया कि नीचे वाली की माँ ने नाती होने की खुशी में दीदी के लिए यह धोती भेजी है, फिर दूसरी धोती सामने करके कहा, 'और यह मेरे लिये भेजी हैं।'

जिठानी ने बहुत प्रसन्न होकर कहा, 'धोती तो मुझे बहुत बढ़िया भेजी भाई, पर तेरी धोती कुछ घटिया मेल की है।'

मनोरमा ने सर डाले कहा धीरे से, 'दासी को मालकिन के बराबर कहीं कोई नहीं समझता दीदी !'

दीदी ने झूठी नाराजगी से कहा, 'चुप रह, हत्यारी ! हाँ री, नीचे वाली ने धोती यह कब भिजवा दी ? मुझे खुद देने न आयी मिजाजिन !'

मनोरमा ने मीठी हँसी हँस कर कहा, ''वह उस दिन की लड़ाई से बहुत शर्मिन्दा हो गयी है, दीदी। तुम्हीं बोल-चाल शुरू कर दो न !''

धोती को देख कर दीदी जोश में आ गयी थीं। लौंडिया को वहीं छोड़, छज्जे पर आ खड़ी हुई और प्यार से पुकार कर बोलीं, 'अजी कहाँ हो जी, सुनो तो जरा। भतीजा कैसा है तुम्हारा ? खूब गोरा-चिट्टा है न, बाप की तरह ? अम्माँ तो अच्छी है ?'

मनोरमा बच्ची को नंगा करके तेल मलती रही और इधर जी खोल कर बातें हुईं ऊपर वाली से नीचे वाली की।

जिठानी उधर से लौटीं, तो खूब खुश थीं। पलंग पर लेट कर बोलीं, 'दिल की अच्छी है यह नीचे वाली लुगाई। मक्कार तो वह है पड़ोस की डायन। तन भी काला, मन भी काला।'

मनोरमा ने तेल मलते पूछा, 'दीख नहीं रही है इधर कई दिनों से ये पड़ोसिन। मायके गयी है क्या ?'

'अब धरा है मायका !' जिठानी ने ओंठ सिकोड़कर कहा, 'माँ-बाप-भैया सबको खा चुकी है चुड़ैल। बीमार बड़ी है, पाप फूट रहे हैं।'

····दादा जी के मोजों पर साबुन लगाने सुबह-सुबह ही मनोरमा नीचे पाइप पर आयी, तो नीचे वाली सो रही थी और रमिया आँगन बुहार रहा थी। रमिया ने आज सखी से बात न की। मनोरमा ने मोज पर साबुन रगड़ते पूछा, 'चिट्ठी आयी, रमिया ?'

पर रमिया न बोली। मनोरमा ने हाथ रोककर उसकी ओर देखा, तो रो रही थी चुप-चुप। आँखों से आँसू टपक जाते थे और शिथिल हाथों से झाड़ू चला रही थी।

अशंकित सी होकर मनोरमा उसके आगे आ खड़ी हुई और स्नेह से पूछने लगी, 'क्या बात हुई है ? रो क्यों रही है री ?'

रमिया ने पलकें उठा कर बहू जी की ओर देखा और रोती-रोती बोली, 'बीमार हो गये हैं वो। कल चिट्ठी आयी है। अब कैसे मैं कलकत्ते पहुँचूं ? कहाँ से इतने रुपये पाऊँ ? पंख होते तो पंछी बन कर उड़ जाती, बहू जी।' कहते-कहते नयनों से आँसुओं की धार बँध गयी।

मनोरमा एक शब्द न बोली। वह उन्हीं पैरों ऊपर चली गयो और घड़ी-पीछे लौट आकर रमिया से कहा, 'इधर आ।'

कंडाल में कूड़ा फेंक कर रमिया आँखें पोंछती बहू जी के आगे आ खड़ी हुई तो मनोरमा ने हाथ बढ़ा कर धीरे से कहा; 'ले तो, ये चालीस रुपये हैं। मेरे पास बस, यही इतने थे। ले, सम्हाल।'

रमिया ने वे रुपये ले लिये अंचल पसार कर और पलक मारते वहीं बैठ गयी और दोनों हाथ बढ़ाकर पैर पकड़ लिये बहूजी के और रोने लगी फूट-फूटकर, तो मनोरमा बिलकुल कातर हो गयी। रमिया की पीठ पर अपना स्नेह कम्पित हाथ रख कर रुँधे गले से कहने लगी, 'यह तू क्या कर रही है, सखी ? तू मेरी बहिन ही तो है। बहिन का पैसा क्या तेरा पैसा नहीं है ? तेरी माँग का सिन्दूर अमर हो, बहिन ! तू रो मत सखो, मेरा कलेजा निकला आ रहा है।'

रमिया का कण्ठ अवरुद्ध था। आँखों से छर-छर आँसू गिराती अपनी सखी के चरणों पर सर रखने लगी, तो मनोरमा ने सारी सुध-बुध बिसार कर उसे अपने कलेजे से कस लिया और निःशब्द रोयी।

सारे दिन मनोरमा को उदासी घेरे रही। जब किसी काम में उसका मन न लगा, तो किताब लेकर लेट गयी। पढ़ते-पढ़ते ध्यान आया कि रमिया ट्रेन में बैठी चली जा रही होगी। कह रही थी, जाने कैसे होंगे, जाने कितना दुख उठा रहे होंगे जाने कोई पानी देने वाला भी होगा कि नहीं। परदेश में कौन किसका होता है ? और तब सहसा मनोरमा

को याद आयी कि ये पड़ोसिन बीमार हो गयी है। वह तड़ित् वेग से उठ बैठी और गली वाली खिड़की खोल कर देखने लगी। देखा कि सामने वाली खिड़की में सलाखों से सर टेके पड़ोसिन के चारों बच्चे मूक बैठे हैं, उदास-मुरझाये हुए चेहरे लिये और नीचे गली में खड़े खोमचे वाले की मिठाई पर टकटकी लगाये हैं चारों। शायद चारों ही सुबह से भूखे हैं। उनकी माँ बीमार पड़ी है। शायद बुखार में बेहोश है। बाप अब लौटे होंगे दफ्तर से थके-माँदे। क्या कर रहे होंगे ?

मनोरमा की नजर भीतर तिदरी तक गयी, तो गरीब बच्चों का गरब बाप अँगीठी आगे रखे पंखा धौंप रहा था फटाफट।

मनोरमा ने दौड़े आकर जिठानी से करुणा-प्रार्थी होकर कहा, 'दीदो, पड़ोसिन के बच्चे भूखे बैठे हैं।'

जिठानी लेटी-लेटी बोलीं, 'बाप नहीं लौटा अभी तक ? नासपीटा कहीं यार-दोस्तों में बैठा गप्पें हाँक रहा होगा, उसे क्या परवाह ! निरदयी !'

मनोरमा ने डरते-डरते पूछा, 'दीदी, मैं बना कर खिला आऊँ बच्चों को ? बड़ो दया लगती है, दीदो।'

दीदी ने स्वाकृति दे दी।

बच्चे खा-पीकर खेलने लगे, तो मनोरमा सिर दबाती रही बीमार पड़ोसिन का। छोटे बच्चे को दस्त हो रहे थे। बाप ने बाहर से खाँस कर कहा, 'मुन्नू के कपड़े फेंक दो इधर। धो लाऊँ नीचे।'

मनोरमा ने पड़ोसिन का हाथ पकड़ लिया और स्नेह से बोली, 'मना कर दो दीदी, मैं धो लूँगी अभी सब।'

पड़ोसिन की आँखें छलछला आयीं। उन्हीं पानी-भरी आँखों से मनोरमा का मुख निहारती बोली, 'इतना बोझ मत लादो बहिन, मेरी छाती पर। मर जाऊँगी मनोरमा !'

मनोरमा ने कातर कण्ठ से कहा, 'बोझ कैसा दीदी ? ये बच्चे क्या मेरे नहीं हैं ?' और पलक मारते उसने वे सब गन्दे कपड़े उठा लिये।

कपड़ों का ढेर धोकर अपने घर लौटी और दबे पाँव जीना पार किया और दबे पाँव छत पर आयी और बाहर दालान में दादा जी के जूते उतरे दीखे, तो मनोरमा चौंकी कि आज तो दावत थी दोनों भाइयों की बड़े बाबू के यहाँ। क्या दादा जी दावत में नहीं गये ?

दबे पाँव आगे बढ़ी, तो जिठानी को अपना नाम लेते सुना। मनोरमा दीवार से सटकर सुनने लगी। दादा जी बोले, 'नहीं-नहीं, उससे कोई चर्चा न करना।'

'चर्चा करूँगी किस मुँह से ?' दादी ने धीरे से कहा, 'एक जेवर तो उसे बनवा न सकी। उसका अपने बाप का दिया है सब। हमारा अधिकार ही क्या है उन जेवरों पर। पर कब तक चाहिए ? क्या सोचा है फिर ? कहाँ से दोगे इतना ?'

दादा जी साँस खींच कर बोले, 'परसों तक जमा कर देना है। न दे सका, तो मित्र की नौकरी चली जायगी। उसने मेरे ऊपर बहुत एहसान किये हैं, सुख-दुःख में सदा साथी रहा है। जमानत कर बैठा। अब पता चला कि साढ़े चार हजार नकद देना होगा। वह तो निश्चिन्त होकर अपने घर चला गया, यहाँ मुझ पर यह विपदा आन पड़ी। मित्रता नहीं निभाता, तो पापी बनता हूँ, हिम्मत करता हूँ, तो कोसों तक कूल-किनारा नहीं। कैसे धर्म संकट में फँसा हूँ, बिट्टो की माँ ! बोलो, क्या कहती हो, दोस्ती से हाथ खींच लूँ क्या ?'

दीदी ने काँप कर कहा, 'दोस्ती से हाथ न खींचो तुम। जैसे भी हो भाग दौड़ कर इन्तजाम कर लो। धर्म से मत डिगना, चाहे कुछ भी हो जाय, दोस्त की रक्षा करना। इतने बड़े-बड़े आदमियों से जान-पहिचान है, वह किस दिन काम आयगी ?'

दादा जी बोले, 'भगवान् चाहेंगे तो जरूर इन्तजाम हो जायगा। होगा क्यों नहीं ? मेहरा से कहूँगा। बड़ा आदमी है, उसके लिए चार हजार खेल समझो।'

दीदी ने धीरे से कहा, 'आज को मेरे पास अगर सोना होता, तो काहे को गैर से मुँह खोलते फिरते। कभी एक छल्ला तक बनवा के न दिया।'

पालने में बच्ची रो उठी। जिठानी को उठता सुन मनोरमा झटपट कोठरी में घुस गयी।....

....दूसरे दिन छुट्टी थी। जगदम्बा अपने तीन-चार मित्रों के साथ कहीं पिकनिक करने चला गया था।

मनोरमा आज भी पड़ोसिन के घर जा पहुँची थी और बच्चों को खिला-पिलाकर जूठे बरतन इकट्ठे कर रही थी। बच्चों का बाप पत्नी की दवा लेकर लौटा और मनोरमा को यों जूठे बरतन माजते देखा तो वहीं आँगन में ठिठक रहा। फिर कातर होकर बोला, 'यह क्या कर रही हो, बेटी ? तुम ब्राह्मण हो, हमें पाप लगेगा। बरतन छोड़ दो बिटिया !'

पर मनोरमा ने न सुना। बरतन माँज-धो कर पड़ोसिन के पास आकर बोली, 'अब इजाजत दो दीदी, और कोई काम हो तो बुला लेना रम्मू से, फौरन चली आऊँगी। जाऊँ दीदी ?'

रुग्णा पड़ोसिन ने इशारे से कहा, 'इधर आ जरा।'

मनोरमा उसके मुरझाये चेहरे पर झुक आयी। पड़ोसिन ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर माथे से लगा लिये, फिर हाथों को हथेलियाँ चूम कर सूखे ओठों से कहा, गीली आँखें लिये, 'अपनी जिठानी को भेज देना।'

सो जिठानी उसी पड़ोसिन के पास गयी थीं और मनोरमा बच्ची का फ्राक काटने बैठी थी कि दादा जी आते दीखे दूर से। मनोरमा ने

मुख पर आधा घूँघट खींच लिया। दादा जी भीतर घुसते-घुसते सिर डाले कहने लगे, 'कुछ नहीं हो सका इन्तजाम। बिट्टो की माँ, कुछ नहीं हो सका। मेहरा कलकत्ते चला गया है। सब जगह मुँह डाल आया। अब बोलो, क्या करूँ? इज्जत-आबरू गयी, धर्म गया, और मित्र मेरा फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा। अब बोलो!' कहते-कहते जो नजर इधर को की और अकेली मनोरमा को बैठे देखा, तो बहुत घबराये। घबरा कर और सकुचाकर बोले, 'अरे, बेटी, तुम हो? माफ करना, बेटी!' और फौरन अपने कमरे में घुस गये और कुरसी में गिर गये और सिर पकड़ लिया दोनों हाथों से और समाविस्थ से हो गये।····

घड़ी-पीछे पैरों के पास कुछ आहट पाकर उन्होंने जो सर उठाया तो मनोरमा बैठी थी चरणों के साथ।

घबरा कर पूछने लगे, ''क्या है, बेटी, क्या बात है?'

मनोरमा ने जीवन में पहली बार दादा जी के आगे जुबान खोली। कम्पित वाणी में कहा हौले से—'ये जेवर लायी हूँ। ले लीजिए इन्हें।'

दादा जी निश्चल, अवाक् रहे। मनोरमा ने जेवरों की पोटली चरणों के बिल्कुल निकट रख कर काँपती और मोह-भरी वाणी से कहा, 'मेरे सिर की सौगन्ध है आपको, अस्वीकार मत कीजियेगा।'

दादा जी ने भरे गले से कहा, 'यह तुमने क्या किया, बेटी?'

तब मनोरमा उसी मोह में डूबी काँपती जुबान से कहने लगी—'तीन दिन से इतनी चिन्ता में डूब रहे, इतना कष्ट सहते रहे, पर आप मुझसे कुछ न कह सके। सारी रात मैं यही सोच कर रोती रही कि दादा जी ने मुझे इस योग्य ही नहीं समझा। दरिद्र पिता की बेटी हूँ, शायद विश्वास नहीं हुआ मेरा। पर यह तुच्छ सोना क्या मेरे लिए आपकी इज्जत से भी महान् है? किसी मित्र के संकट में अगर ये जेवर काम आ जायँ, तो इससे बढ़कर इनका शृंगार और क्या होगा? बाबू जी ने मुझसे उऋण होकर दीन-दुखियों की सेवा के लिए अपना व्रत निभाने को संन्यास

ले लिया। आज यह पूरा देश उनका सेवा-क्षेत्र हो गया है। अपने बाबू जी के बराबर मैं अकिंचन कभी नहीं हो पाऊँगी। शायद यही सोच-कर बाबू जी मुझे इस मन्दिर की दासी का पद दे गये हैं। देवदासी का सब कुछ देवता का हो जाता है, तन भी और धन भी। कितना रोयी यह सोचकर कि मेरे दादा जी ने मेरा यह धन अपना करके नहीं माना। मैं तो तन भी अपना नहीं जानती थी। सोचती थी, शायद कभी अवसर आये, कभी जरूरत पड़े मेरे दादा जी को तो रक्त दे दूँगी अपना, सब रक्त दे दूँगी। सब कुछ उनका है, सब कुछ दे दूँगी अपने दादा जी को!' कहते-कहते मनोरमा का कंठ रुँधने लगा और आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं दादा जी के चरणों पर, तो दादा जी ने बिलकुल बालक की तरह रो कर कहा, 'बस बेटी, अब और कुछ मत कहना, अब और सह नहीं सकूँगा लाड़ली!'

'और एक प्रार्थना है',—मनोरमा ने गीली पलकों से कहा, 'दीदी से कुछ मत कहिएगा। यह....'

तो दादा जी ने फौरन आँखों से आँसू बहाते हाथ हिलाकर कहा, 'तुम्हारी यह बात मैं हरगिज नहीं मानूँगा, बेटी! मैं तुम्हारी दीदी से जरूर कहूँगा। जरूर कहूँगा। अपने मित्र से कहूँगा। सबसे कहूँगा। तुम्हारे इतने बड़े त्याग और बलिदान की बात नहीं छुपा सकूँगा, बेटी, नहीं छुपा सकूँगा।'

सहसा पत्नी ने चौखट पर खड़े-खड़े घबरा कर पूछा, 'क्या हुआ? रो क्यों रहे हो? हुआ क्या?'

व्याकुल-सी मनोरमा उठ कर भागी। भागे आकर उसने अपने कमरे की किवाड़ें भीतर से बन्द कर लीं, खाट पर गिर पड़ी और रोने लगी निःशब्द, तो उसी समय सुन पायी कि दादा जी दीदी से कह रहे हैं, 'अब मैं क्या करूँ, बिट्टो की माँ, अब करके अपनी बेटी से उऋण हो

पाऊँगा ? मैं अपना कलेजा निकाल कर उसके चरणों पर रख देना चाहता हूँ'....

मनोरमा ने कसकर अपने दोनों कानों में अँगुलियाँ ठूँस लीं और, 'हाय दादा जी' काँपते ओंठों से कहती घायल पंछी-सी फड़फड़ाती रही और आँखों से आँसू बहते रहे।

कि दीदी ने जोर से किवाड़ थपथपा कर रोते-रोते कहा, 'कुंडी खोल।'

मनोरमा न उठी। दीदी ने रोते-रोते बाहर से कहा, 'किवाड़ें खोल, नासपीटी ! एक बार तुझे अपने कलेजे से लगा लूँ, हत्यारिन !'

मनोरमा ने भीतर से रोते-रोते कहा कातर कण्ठ से, 'नहीं खोलूँगी किवाड़ें। हाय राम, जरा-सी बात पर मुझे कितनी लज्जा दे रहे हैं ! तुम सब मेरी जान ले लोगे क्या ? तुम्हारे पैरों पड़ूँ, दीदी दया करो माँ !'

बाहर दीदी बैठी रो रही थीं। भीतर मनोरमा बैठी रो रही थी। दादा जी अपने कमरे में बैठे रो रहे थे।

तब केवल एक व्यक्ति तटस्थ रहा। वह बाहर बरामदे में बैठा था और बड़े मजे से अमरूद तराश-तराश कर खा रहा था।

यह जगदम्बा था, मनोरमा का स्वामी।

●

हनुमान

हर साल राम-लीला होती और हर साल राम-लीला में चेतराम पाठक हनुमान बनते थे। इस साल जाड़े में वह चल बसे तो एक समस्या खड़ी हो गयी कि अब कौन बने हनुमान, किसको फबेगा चेहरा, कौन ऐसा बली है ?

कलेक्टर के पेशकार मुंशी महताब राय राम-लीला कमेटी के मैनेजर थे। वह कस्बे में आये हुए थे। मन्दिर में सब लोग जमा थे। कल से राम-लीला शुरू होने को थी और यह अभी निश्चय न था कि कौन बनेगा हनुमान।

जिस-तिस के नाम लोग ले रहे थे, पर कोई ठीक जँचता न था कि अचानक मुंशी महताब राय ने खुशी से उछल कर कहा, "यह बैठा तो है हनुमान !" तब जैसे सब की नजर गयी और सब जैसे चौंके और सब प्रसन्न हुए कि हाँ, यह बैठा तो है हनुमान !

और सबने कहा एक स्वर से, "बस-बस, हो गया ठीक ! चलो, चिन्ता कटी।"

....उसका असली नाम कोई नहीं जानता था। छोटे-बड़े सब उसे 'हनुमान' कहकर ही पुकारते थे। असली नाम से तो उसे केवल माँ पुकारती—माँ उसे गंगासहाय कहकर पुकारती, नाराज होती तो फिर 'गंगासैया' कहती।

गंगासहाय नाम कस्बे के एक पंडित ने पंचांग देखकर रखा था, पर दूसरा नाम उसने इस दुनिया में अवतरित होते ही पा लिया था। सूतिकागृह से बाहर निकलते ही खटकिन दाई मुँह में आँचल देकर बोली कि हनुमान पैदा हुआ है !

चाची बोलीं—"कहती क्या है री, हनुमान पैदा हुआ है !"

दाई बोली—"जिया की कसम, हू–ब–हू हनुमान है, बस, पूँछ नहीं है।"

चाची से अदावत चल रही थी। दुश्मन के पुत्र हुआ था। हनुमान है हू–ब–हू, सुन कर कलेजे में थोड़ी चैन पड़ी। तब भी मुँह से यही निकला, "हाय राम, हनुमान पैदा हुआ है अभागिन के !" और बारह दिन बाद तो सबने अपनी आँखों से देख लिया उसे। चेहरा–मोहरा बिलकुल हनुमान जैसा था। उसी तरह ठोढ़ी आगे को निकली हुई, नाक धँसी हुई और ओठ फैले-फैले। सारे शरीर पर रोएँ थे और चौड़े पंजों वाले हाथ-पैर थे।

फिर ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया—सयाना होता गया, रंग-ढंग भी हनुमान-जैसे ही दीखने लगे। लम्बी ऊँची छलाँग मारता, बात कहते पेड़ पर चढ़ जाता, अपने से दुगुने लड़के को उठा कर पटक देता, जिस काम को कहो आनन-फानन में करके रख देता। लोग शाबाशी देते, 'वाह रे हनुमान !' तो सीना फुला लेता, दाँत चमका कर हँसता। और यह सब देख सुन कर माँ उसकी कभी हँसती तो कभी कुढ़कर मन ही मन कहती कि मेरी कोख से यह काहे को पैदा हुआ अभागा !

पर उसे अपने इस बेढंगे-कुरूप चेहरे के लिये कोई लज्जा, कोई कुण्ठा न थी, बल्कि सच पूछो तो बड़ा नाज था उसे अपने इस हनु-मानत्व पर। भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर में जाता तो मूर्ति के सामने घंटों एक पैर से खड़ा रहता, मूर्त्ति के सम्मुख लम्बा लेट कर प्रणाम कतरा। चरणामृत पीकर नयन मूँद लेता, मानो हृदय में अमृत उतर गया हो।''''धीरे-धीरे उमर बढ़ती गयी और महावीर-जैसा शरीर बढ़ता गया। बल बढ़ता गया और खुराक बढ़ती गयी। बाप तो जन्म से चार मास पहले ही चल बस थे। माँ थी दुखियारी और खेत था बारह बीघा

नदी-किनारे और एक बगिया थी अपनी छोटी-सी। किसी तरह गुजर-बसर होती थी, किसी तरह दोनों माँ-बेटे जिन्दा थे।

हनुमान ने जैसे-तैसे मिडिल तक पढ़ा, परीक्षा दी और फेल हो गया तो फिर उसने बड़ी शान्ति से अपनी माँ से कह दिया कि बस, अब नहीं पढ़ूँगा, अब नहीं पढ़ सकूँगा।

"क्या करेगा तू ?" माँ ने उसाँस लेकर पूछा तो छूटते ही बोला, "सेवा करूँगा भगवान की।"

"खायेगा क्या ?"

महावीर-जैसे बलिष्ठ शरीर वाला बोला हँसकर, "अन्न खाऊँगा।"

माँ ने कुढ़ कर कहा—"तेरे लिये दोनों जून ढाई सेर अन्न चाहिए। इतने सालों से तेरे लिये हड्डियाँ घिस रही हूँ, इतने साल हो गये अन्न जुटाते। तू क्या यही चाहता है कि मरते दम तक इसी तरह तेरे लिये हाड़ माँस सुखाती रहूँ अपना ?'

हनुमान घड़ी भर स्तब्ध रहा फिर उसने धीरे-धीरे कहा, "नहीं माँ, मैं कुछ उपाय करूँगा, अब तुझे कष्ट न दूँगा।"

हनुमान ने दूसरे ही दिन काम ढूढ़ लिया अपने लियें। हरचरन लाला की दूकान थी हलवाईगिरी की। पन्द्रह दिन से ऊपर हुए, उनका नौकर सन्दूक की कुल रकम झाड़कर ले भागा था और अब पास-पड़ोस के गाँवों से दूध लाने वाला कोई न था। हनुमान ने यह भार अपने कन्धों पर लिया। वह लाला के लिए गाँवों से दूध लाने लगा।

सप्ताह भर मुश्किल से बीता होगा कि एक दिन अचानक एक छोटी-सी घटना हो गयी। हनुमान दूध लाया, लाला ने उसके सामने ही दूध में पानी मिलाया, फिर गड्डु-बड्डु करके रख दिया बाहर चौतरे पर। हनुमान बैठा देखता रहा। लाला भट्टी सुलगाने लगे कि एक गाहक आ पहुँचा। लाला ने हनुमान से दूध देने को कह दिया।

"पैसे ?"

लाला वहीं से बोले—"चार आने।"

हनुमान ने दृढ़ता से कहा, "नहीं, दो आने।"

लाला भौंचक रह गये। हनुमान उठकर खड़ा हो गया। उसने चिल्लाकर कहा, "तुम कैसे जालिम आदमी हो! दस सेर दूर में सात सेर पानी मिला कर दूने दाम वसूल कर रहे हो। लेकिन इन गरीबों पर तो रहम करो, इनसे पैसा ठगते तुम्हें शरम नहीं आती ?"

लाला ने इस पर कुछ कहा तो हनुमान और जोर से चिल्लाया। देखते-देखते भीड़ जमा हो गयी। कुछ लोग लाला का पक्ष ले रहे थे। सहसा हनुमान दूकान से कूदकर नीचे आया और भीड़ से बोला, "रहना भाइयो, मैं अभी आया।" और वह पलक मारते दारोगा जी को बुला लाया पुलिस चौकी से बाँह पकड़ कर और उन्हें दूध के पास खड़ा करके बोला कि इसे नपवाइये जरा। मैं अभी गाँव से कुल पन्द्रह सेर दूध लाया हूँ और अब इस बरतन में पच्चीस सेर से कम दूध न होगा। लाला से पूछिये जरा, मैं कितना दूध लेकर आया हूँ, बही में कितना लिखा है उन्होंने ?

लाला के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। दारोगा जी हँसने लगे। पता नहीं लाला पर क्या बीती। हनुमान की नौकरी छूट गयी। दो दिन वह गुम-सुम पड़ा रहा, भीतर कोठरी में। न माँ ने कुछ पूछा, न बेटा कुछ बोला। तीसरे दिन वह तड़के-तड़के दूध वाले गाँव में जा पहुँचा और बारी-बारी से घर-घर दूध वालों से जाकर कहने लगा, "मुझे दूध दो अपना, लाला से एक आना ज्यादा दूँगा सेर पर। पर भाइयो, पेशगी देने के लिए मेरे पास एक पैसा नहीं है। मुझ पर यकीन करो, मेरे ईमान-धर्म पर विश्वास करो तो दूध दो मुझे।"

दूध वालों ने कहा, "हम तुम्हारा यकीन करते हैं, हम तुम्हें दूध देंगे। तुम ब्राह्मण हो, तुम छल-छिद्र क्या जानो! हम आदमी को पहचानते हैं। लाला तो पूरा राक्षस है। हम तुम्हें दूध देंगे।"

और तब महाबीर, जैसे बलिष्ट शरीर वाले ने यह मेहनत-मशक्कत का काम अपना लिया। शुरू-शुरू में वह दूध सिर पर लाद कर लाता रहा, फिर उसने एक पुरानी साइकल खरीद ली। बड़े-बड़े ढक्कनदार बरतन खरीदे लोहे के और दूध का कारोबार करने लगा।

पहिले दिन वह पुल के पास दूध लेकर खड़ा हुआ था और चिल्ला-चिल्लाकर कहता था, "खालिस दूध लो, सात आने सेर। मिलावट सिद्ध करने वाले को सौ रुपये इनाम दूँगा। खालिस दूध, सात आने सेर!"

घंटा भर बीत गया। हनुमान स्थिर होकर खड़ा था कि बुढ़िया आयी पड़ोस वाली घसियारिन, उसका नाती बीमार था। पाव भर दूध लेकर पैसे देने लगी टटोल-टटोल कर तो हनुमान ने वहीं उसका हाथ पकड़ लिया और हँस कर कहा—"पैसे नहीं, आशीर्वाद दे मुझे दादो, यह दूध मेरा बिक जाय।"

बुढ़िया की बुझती आँखों में पानी छलछला आया। आकाश की ओर देख कर बोली काँपते कण्ठ से—"हे नारायण स्वामी...." पता नहीं बुढ़िया का आशीर्वाद फला या कि यों ही सब हुआ, दो घंटे में सारा दूध बिक गया हनुमान का।

तब से फिर यही क्रम चला। हनुमान तड़के-तड़के गाँवों से दूध लाता, सेर पर दो पैसा नफा लेकर बेचता, नहाता-धोता, रामायण का पाठ करता, भोजन करता, मन्दिर में जाता, रात को कथा सुनता, माँ को आकर सुनाता और गाढ़ी नींद सो जाता।

इस तरह जब जिन्दगी का दरिया अबाध गति से बहता चला जा रहा था, एक दिन अचानक रात को माँ ने खुशी-खुशी सुनाया कि उसकी शादी ठहर रही है, यहीं कस्बे में। लड़की के रूप-गुण की प्रशंसा सुनी, फिर सुना कि पढ़ी-लिखी भी है, फिर सुना कि बाप नहीं है उसका, जल्दी ही शादी कर देना चाहती है उसकी माँ। हनुमान सब

कुछ सुन कर चुप रहा। भगवान् जानें, उसे कैसा लगा। पर दूसरे दिन जब वह अपना दूध बेच कर वापस घर जाने की तैयारी कर रहा था, एक आठ-नौ साल का छोकरा उसे एक चिट्ठी पकड़ा गया।

हनुमान ने शान्त भाव से वह चिट्ठी पढ़ी। चिट्ठी उसी लड़की ने लिखी थी, जिसके साथ उसकी शादी पक्की हो रही थी। चिट्ठी में उसने करुणा-पूर्ण शब्दों में अनुनय-विनय करके, पैरों पड़ कर लिखा था कि उसका किसी दूसरे से प्रणय-बन्धन हो चुका है। प्राणों से प्राण बँध गये हैं, हृदय में हृदय समा गया है। रक्षा करो, मुझ अभागिनी पर दया करो, मैं जीवन भर तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी। मैं किसी दूसरे की हो चुकी हूँ। तुम इस शादी को रोक दो, नहीं मैं अपनी जान दे दूँगी····

हनुमान बहुत प्रयत्न करके उस लड़की से एकान्त में मिला। आँसू बहाती खड़ी थी दुखियारी कोने में, लाज से मरी और चिन्ता-शोक में डूबी।

हनुमान ने स्नेहार्द्र होकर कहा—"तुम कुछ चिन्ता न करो। मैं सब ठीक कर लूँगा। मैं कल ही सत्यप्रकाश के भाई से मिल कर सब तय करा लूँगा। मैं भगवान् के आगे प्रण करके आया हूँ। तुम अब दुःख मत मानना। तुम्हें तुम्हारा सत्यप्रकाश मिल जायेगा। मैं भला तुम्हारे काबिल था ! पढ़ा नहीं, लिखा नहीं, पैसा नहीं, गुण नहीं, तिस पर यह बेढंगी शकल, यह चेहरा, नाम हनुमान····"

शान्ता ने पलक मारते हनुमान के पैर पकड़ लिये और पैरों पर आँसू बहाती बोली कातर वाणी से, "ऐसे मत कहो, इतनी निर्दय बात मत कहो, तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो, तुम देवता हो·····।"

हनुमान ने उसे उठा लिया पैरों से, और भरे गले से कहा—"लेकिन एक शर्त है। मानोगी ?"

"मैं तुम्हारी हर शर्त मानूँगी।" वह आँसू बहाती हुई बोली।

"तो हर साल रक्षा-बन्धन के दिन तुम्हें मेरे पास राखी भेजनी होगी। जहाँ कहीं रहो, जिस दशा में रहो, राखी भेजना मेरे लिये। आज से तुम मेरी बहिन हो। मैं जिन्दगी भर बहिन के प्यार के लिए प्यासा रहा हूँ...."

शान्ता चीख मार कर हनुमान के हृदय से चिपक गयी और 'हाय भइया!' कह कर करुण क्रन्दन कर उठी तो हनुमान ने अपनी बलिष्ट भुजाओं में लपेट लिया और आँसू न रोक सका फिर वह।....

आखिर एक दिन सत्यप्रकाश के साथ शान्ता की शादी हो गयी। हनुमान सारी शक्ति से, पूरे तन-मन से शादी में लगा रहा। विदा की बेला उसने अपनी शान्ता बहिन को एक साड़ी भेंट दी। शान्ता उससे लिपट कर खूब रोयी, हनुमान भी रोया।....

जिन्दगी का पहिया फिर उसी तरह घूमने लगा कि सारे देश में, इस कोने से उस कोने तक, साम्प्रदायिक आग फैल गयी। प्रतिदिन सैकड़ों और हजारों निरपराध स्त्री-पुरुषों के प्राणों की आहुतियाँ दी जाने लगीं। इस जरा-से कस्बे में भी उस आँच की लपट आयी। मुसलमानों के कुल तीन घर थे। तीनों गरीब थे और बिसाती थे। सारे दिन पेटी लादे पास-पड़ोस के गाँवों में घूमते और अनाज के बदले शीशा, कंघा, साबुन, चूड़ियाँ, बिन्दी और बेल-बूँटे बेचते थे।

शाम को मन्दिर के दरवाजे पर छः-सात नौजवान इकट्ठे होकर न जाने क्या बातें कर रहे थे। हनुमान ने वहीं आकर जूते उतारे तो एक बोला धीरे से कि, इसे भी साथ ले लो, बड़ा बली है, एक हाथ में एक आदमी को साफ कर देगा। दूसरा बोला कि, नहीं जी, हम इसका विश्वास नहीं कर सकते, समय पर दगा दे सकता है। तब तीसरा बोला कि, हम इतने ही काफी हैं। कल सबेरे सब विधर्मियों की लाशें धूल में लोटती होंगी और घरों में आग लगी होंगी उनके....

हनुमान ने जल्दी-जल्दी भगवान् को प्रणाम किया। पुजारी बोले, "बैठो भक्तराज, अभी पूजा-आरती होने वाली है।"

पर हनुमान न रुका। वह क्षमा माँग कर चल दिया भगवान् से और पुजारी से। वह सीधा मुसलमानों के यहाँ पहुँचा हाँफता हुआ। दिन भर के थके-मादे तीनों बिसाती बाहर बैठे हुक्का पी रहे थे। घरों में चूल्हे जल रहे थे और बच्चे आँगन में शोर मचा रहे थे। हनुमान विह्वल भाव से बोला, "जल्दी करो, मेरे घर चलो सब। अभी फौरन...."

....पिछवाड़े की गली से, चोरी-छिपे वे सब मुसलमान स्त्री-पुरुष बच्चे हनुमान के आँगन में आ खड़े हुए साँस साधे, तो यह दृश्य देख कर माँ भौंचक्की रह गयी। हनुमान ने उसके पैर पकड़ कर भिक्षा माँगी शरणागत के लिए, फिर वह अपनी लाठी लेकर मुसलमानों के घर पर चढ़ गया और छतों पर इधर से उधर चक्कर काटने लगा। तभी वे लोग आ गये। हनुमान ने अन्धेरे में दूर से ही पहचान लिया। हथियारों से लैस होकर वे लोग आ रहे थे विधर्मियों का नाश करने। महावीर जैसे बलशाली हनुमान ने कड़क कर कहा, "खबरदार, जो कोई आगे बढ़ा। किसी ने आग लगायी यहाँ तो मैं उसका खून पी लूँगा। मैं भगवान की शपथ खाकर कहता हूँ, आग लगाने वाला जिन्दा न लौटेगा यहाँ से। बढ़ो आगे.... ।"

वातावरण शान्त हुआ तो गाँव के बड़े-बूढ़ों ने आशीर्वाद दिया, पुजारी गद्-गद हुए और मुसलमानों के हृदय छीन लिये हनुमान ने। आँखों में आँसू भर-भरकर कहते थे कि, वह क्या हमारे तुम्हारे जैसा इन्सान है ! वह तो पीर पैगम्बर है कोई।

क्वार आ गया। रामलीला की तैयारी हुई। तभी अचानक हनुमान को यह हनुमान की लीला करने को मिली।

मुंशी महताबराय इस कस्बे की शान थे। सिर्फ कलक्टर के पेशकार न थे, भगवान के परम भक्त भी थे। इतने दरिया दिल और इतने वसीय कि लगता जैसे कोई समुद्र है कि जिसका आदि अन्त नहीं है। उनके कोई आस-औलाद न थी, सारे कस्बे को अपना सगा करके मानते थे। जिले में पिछले साल जो कलक्टर आया था वह आइरिश था। भारत के प्रति, भारतीय संस्कृति के प्रति उसे भारी आकर्षण था। मुंशी जी ने उसे तुलसीदास की वाणी सुना-सुना कर विभोर कर दिया था। विह्वल था रामायण के कवि पर और रामायण उसे प्राय: कंठस्थ-सी हो गयी थी। मुंशी जी ने अपने उस कलक्टर को निमंत्रण दिया कि उनके कस्बे की रामलीला एक दिन आकर जरूर देखें। साहब ने भारी प्रसन्नता से कहा था कि जरूर आयेंगे एक दिन।

सो आ गये कलक्टर साहब कस्बे में।

मुंशी जी को कस्बे की आन रखनी थी। रामलीला के सब अभिनेताओं को इकट्ठा करके उन्होंने कहा कि, आज अपनी जान लड़ा दो भाइयो, एक विदेशी आज तुम्हारी बस्ती में आया है। अभिनय में, लीला में, आज अपना-अपना कलेजा निकाल कर रख देना लाड़लो! मेरी इज्जत रखना, कस्बे का नाम रखना, धर्म की मर्यादा बचाना, भगवान् को प्रसन्न करना, और क्या कहूँ तुम सबसे....

हनुमान स्तब्ध होकर सब सुन रहा था। मुंशी ने हठात उसकी ओर देख कर पुकारा, "हनुमान!"

तो हनुमान ने सीना उबार लिया अपना।

मुंशी जी बोले, "आज तुम्हारा पार्ट सबसे ज्यादा है। सावधान बेटा, मेरी हँसाई न हो!"

महावीर-जैसे बलशाली हनुमान ने सीना उभार कर धीर-गम्भीर स्वर से केवल कहा, "हँसाई नहीं होगी चाचा!"

मुंशी जी पीठ ठोंक कर चले गये।

ठीक समय पर लीला शुरू हो गयी। कलक्टर जनता के बीचोंबीच कुरसी पर बैठे थे। मुंशी जी बगल में थे।

पहले दो मधुर स्वर वाले बालक रामायण की चौपाई पढ़ते थे। तब पण्डित रामदीन खड़े होकर अर्थ सुनाते चौपाइयों का और फिर सामने मैदान में अभिनेता लीला करते सारे तन-मन और प्राणों का बल लगा कर। कलक्टर मंत्रमुग्ध होकर बैठे थे।

सहसा उनकी नजर हनुमान पर गयी तो जैसे चौंक रहे। बायीं ओर को जरा-सा झुक कर मुन्शी जी से पूछने लगे, "यह नकली चेहरा लगाये हुए हैं या मेक अप किया गया है इतना फाइन ?"

मुन्शी जी ने जरा-सा हँस कर कहा, "नहीं हजुर, नकली चेहरा नहीं लगाये है, न मेक अप किया गया है, उसका चेहरा ऐसा ही है और उसका नाम भी हनुमान है।"

हनुमान का विशाल शरीर, लम्बा चौड़ा सीना, बड़े-बड़े हाथ-पैर और आगे को निकली हुई ठोढ़ी देख-देख कर साहब को बड़ा अचरज लगा और साहब प्रसन्न भी हुए।

लीला हो रही थी। रावण सीता को हर ले गया। सीता लंका में थीं और सीता का समाचार लेने सुग्रीव के दूत समुद्र के किनारे एकत्र थे। संगी-साथी पवन-सुत को समुद्र के उस पार भेजना चाह रहे थे और उन्हें उनके बल-पराक्रम की याद दिला रहे थे।

कस्बे के किनारे जो छोटी-सी नदी बहती थी, वह नदी इस समय समुद्र बन गयी थी। नदी के उस पार लंका बनी थी। लंका में सीता जी बैठी थीं और कस्बे की सब औरतों का जमघट वहीं पर था।

इस पार सुग्रीव के दूत खड़े थे और बाकी दर्शक जनता थी चारों ओर। पवन-सुत समुद्र-लंघन के हेतु उद्यत थे और नदी पर बाँसों के ऊपर तख्ते बिछाए जा रहे थे कि उन्हीं पर उछलते-कूदते हनुमान जी समुद्र पार कर जायँगे।

साहब थोड़े फासले पर थे। जाने क्या खयाल पैदा हुआ और उठ कर वहाँ आ खड़े हुए, बिलकुल नजदीक हनुमान के आगे।

हनुमान को रामायण बहुत-सी याद थी। वह बड़े प्रेम से आँखें मूँदे चौपाई पढ़ कर खुद ही अर्थ करने लगा तो साहब बड़े प्रभावित हुए। सामने तख्ते बिछ रहे थे, जिनके सहारे समुद्र-लंघन होना था। साहब नहीं समझे, मुँशी जी से पूछने लगे—"यह किस लिए किया जा रहा है?"

हनुमान ने साहब का स्वर सुन आँखें खोल लीं। मुंशी जी ने बतलाया कि इसी के सहारे समुद्र पार होंगे पवन-सुत।

साहब तनिक हँस कर बोले—"लेकिन पवन-सुत ने तो यों ही समुद्र पार किया था।"

मुंशी जी मुस्करा कर रह गये। साहब ने हनुमान के बलिष्ठ शरीर पर एक नजर डाल कर कहा—"तुम्हीं हनुमान हो न?"

हनुमान साहब को प्रणाम करके बोला—"जी।"

"हनुमान जी समुद्र को किस तरह पार कर गये थे, पढ़ा है न?"

"जी," हाथ जोड़े हनुमान बोले।

"और तुम छोटी-सी नदी को भी पार नहीं कर सकते!" साहब ने सरलता से हँस कर पूछा—"कितना कूद सकते हो, हनुमान?"

हनुमान हाथ जोड़े खड़ा रहा।

मुन्शी जी और सारे अन्य अभिनेता चुप्पी साधे थे। साहब को जाने क्या हुआ; चारों ओर भीड़ पर एक-नजर डाली और जाने कैसे भावावेश में डूब कर कहा—"क्या इस बस्ती में कोई ऐसा आदमी नहीं, जो इस नदी को कूद जाय?"

सारी भीड़ पर सन्नाटा छा गया। साहब ने यह कैसी बात कह दी! कस्बे का सम्पूर्ण जड़, चेतन, प्राण मानो स्तब्ध हो गया। कहीं कोई आवाज नहीं। रस-भंग होने लगा, तब मानो साहब को सहसा ध्यान

आया। सकुचा कर बोले—"आल राइट ! चौपाई पढ़ो हनुमान, बहुत अच्छा पढ़ते हो तुम।"

लीला फिर होने लगी। अन्त में पवन-सुत चल दिये समुद्र-लंघन हेतु। हनुमान ऊपर के मैदान से नीचे उतरा। नदी के नजदीक पहुँचा। पर वह सामने बिछे तख्तों पर पैर न रख कर किनारे-किनारे जाने क्या ढूँढ़ता आगे बढ़ने लगा। छोटे-छोटे बालक उसके आगे-पीछे लगे थे। हनुमान बढ़ता गया। बच्चे भी साथ-साथ बढ़ते गये। तख्तों से प्रायः बीस कदम और आगे जाकर सहसा हनुमान रुक गया और स्थिर भाव से उस पार बनी लंका और लंका में बैठी श्री सीता जी की ओर देखने लगा। उसने अपने हाथ जोड़ लिये। हाथ जोड़े-जोड़े उसने बालकों को इशारे से इधर-उधर हो जाने के लिये कहा और हाथ जोड़े-जोड़े ही उलटे पैरों पीछे को हटने लगा। सब लोग स्तब्ध होकर देखते रहे कि यह क्या करने लगा हनुमान। पर हनुमान उसी तरह हाथ जोड़े उलटे पैरों पीछे को हटता गया—हटता गया। सब लोग स्तब्ध होकर देखते रहे। सहसा हनुमान रुका, हाथ उसी तरह लंका की ओर जुड़े हुए थे, उसने नयन मूँदे और नयन मूँदे-मूँदे ही वह अत्यन्त तीव्र वेग से किनारे की ओर दौड़ा, जैसे कोई तीर जाता है सरसराता हुआ।

और यह क्या हुआ ?

सारी जनता और साहब और मुंशी जी सब कोई जैसे स्वप्न देख रहे हों।

यह हुआ क्या ?

हनुमान उछला, उछल कर नदी के उस पार जा गिरा।

पलक मारते सब कुछ हो गया।

कितनी भयानक उछाल थी वह !

हनुमान पूरी नदी को उछाल गया, उछल कर उस पार जा गिरा। गिरा लंका में, जहाँ जगन्माता जानकी बैठी थीं। वहीं जाकर गिरा, जानकी के चरणों में।

कि इधर से सारी जनता दौड़ी। हनुमान नदी कूद गया! नदी फाँद गया! अरे बाप रे, हनुमान नदी कूद गया!

सारी औरतें हड़बड़ा कर खड़ी हो गयीं। कोहराम-सा मच गया चारों ओर।

मुंशी जी दौड़ कर भागे आये, चेहरा उनका जाने कैसा हो रहा था, दौड़े आकर गद्‌गद होकर कहा—"हनुमान, उठो बेटा!"

पर हनुमान न उठा।

साहब भी आ पहुँचे, साहब ने क्षिप्रगति से नीचे बैठ कर हनुमान की छाती टटोली जल्दी-जल्दी। मुंशी जी पागलों की तरह साहब का मुँह देखते रहे। साहब ने एक गहरी साँस ली और अपना हैट उतार कर खड़े हो गये। मुंशी जी भी उठ कर खड़े हो गये। चारों ओर सन्नाटा छाया था। सामने हनुमान पड़ा था, औंधे मुँह, जमीन में सिर दिये।

तभी न जाने किधर से सहसा हनुमान की माँ आ गयी। वह हनुमान से लिपट गयी और उसके मुँह पर मुँह रख कर करुण स्वर में पुकार-पुकार कर कहने लगी—"उठो बेटा, तुमने मेरे दूध की लाज रख ली, तुमने गाँव की शान रख ली, तुमने मुंशी जी की इज्जत रख ली। अब उठो बेटा!"

पर हनुमान न उठा।

माँ ने हनुमान के मुँह पर मुँह रख कर रो-रो कर कहा—"अपनी मैया का कहना सुन लो, कन्हैया! उठ कर खड़े हो जाओ, साहब को प्रणाम करो, मेरे गले लगो!"

पर हनुमान न उठा। उसने माँ की कातर प्रार्थना न सुनी, उसने उठ कर साहब को प्रणाम न किया।

●

हारूँगी नहीं

गरमियों के तपिश भरे दिन थे और रोज लुयें चल रही थीं। इस समय सूरज सिर पर था और जलती धरती पर नंगे पैरों पुरोहित गंगाराम अँगोछा डाले चले आ रहे थे।

अपनी देहलीज में आकर रुक गये घड़ी-भर। अँगोछे से माथे का पसीना पोंछा, एक लम्बी-सी साँस ली, धीरे से कहा, "हे मातेश्वरी!" और फिर आँगन की ओर बढ़े।

सामने, कोठे में खाट बिछी थी और खाट पर उनका इकलौता पौत्र रोगी हो कर पड़ा था। दो डग भर कर खाट के पास आ खड़े हुए। बुखार की तेजी से बालक का चेहरा तमतमाया हुआ था और वह जल्दी-जल्दी उसाँसे ले रहा था और नयन मूँदे था, बेसुध था बिलकुल।

खाट के किनारे, जमीन पर एक नारी मूर्ति बैठी थी, मैली जीर्ण-शीर्ण धोती में अपनी कोमल काया छिपाये। सलोने, शुभ्र मुख पर आधा घूँघट खींचे, चूड़ियों से रहित नंगे हाथ से पंखा झल रही थी बालक के ऊपर हौले-हौले। यह पुरोहित की अभागिन विधवा पुत्र-बधू थी। कलेजे में दुख-दर्द छिपाये पुरोहित ने खाँस कर पूछा, "वैद्य आये थे बेटी? क्या कहते थे?"

तब एक दर्द में डूबी करुण आवाज ने कहा, "कहते थे देशी दवा से बहुत दिन लग जायेंगे अच्छे होते। शहर से इंजेक्शन मँगवा लो, तो इंजेक्शन लगा दूँ, चार-पाँच दिन में उठ कर खेलने लगेगा। कहते थे, साढ़े सत्तरह रुपये में तीन इंजेक्शन आ जायेंगे।"

"ठीक है। पैसा मिलते ही इंजेक्शन मगवाऊँगा मैं। आज सप्ताह पूरा हो जायगा चंडी-पाठ करते। शाम को कहूँगा बड़े ठाकुर से। जमा-

न्दार के पोते का भी यही हाल है बेटी, चारों ओर बच्चे बीमार पड़े हैं। पता नहीं, भगवती की क्या इच्छा है! हे मातेश्वरी! तुमने भोजन कर लिया बेटी?"

कोई उत्तर न मिला। पुरोहित ने मोह-भरी वाणी से कहा, "भोजन करो बेटी, कल भी तुमने कुछ नहीं खाया। मुझ पापी को देखो, बालक दस दिन से निराहार पड़ा है और मैं रोज जमींदार के यहाँ फलाहार कर रहा हूँ। उठो बेटी, ऐसे कब तक भूखी रहोगी? बालक तुम्हारा चंगा हो जायेगा। हम ने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया। भगवान् इतने निष्ठुर क्यों होंगे कि हमारा यह सहारा भी छीन लें। भगवान् पर भरोसा रखो बेटी, जाओ, खा-पी लो कुछ।"

बेटी धीरे से उठ गयी। पुरोहित घड़ी-भर बच्चे के पास बैठे रहे फिर जाने क्या सोच कर छिपे-छिपे भीतर वाले कोठे में घुस गये और अपना सन्दूक खोल कर कुछ खोजते रहे। जाने क्या निकाला उसमें से जल्दी-जल्दी, अँगोछे में लपेटा और भरी दुपहरिया में फिर घर से बाहर हो गये।....

दो बजे पुरोहित अपनी पाठ वाली चौकी पर हाथ-पैर धो कर बैठ रहे थे, ठीक उसी समय कई व्यक्ति एक साथ उस कमरे में घुस आये। सबसे आगे वृद्ध जमींदार हरपाल सिंह थे। इन्हें पोथी खोलते देख वह बोले, "आज बड़ी देर कर दी गंगाराम।"

पुरोहित ने सकुचा कर कहा, "जी हाँ, कुछ देर हो गयी सरकार।"

सामने ही रोगी बालक की शुभ्र-धवल शैया बिछी थी। सिरहाने पंखा सनसना रहा था बिजली का और एक युवती दासी बैठी धीरे-धीरे पैरों के तलवे सहला रही थी मलमल के टुकड़े से। पीछे आये तीनों व्यक्ति, सीधे बालक के पास जा खड़े हुए। इनमें से एक जमींदार का दामाद भी था, बाकी दो पौत्र और पौत्री थे। ये तीनों नैनीताल में थे और बच्चे की बीमारी की खबर पाकर चले आये थे। दामाद ने एक

बार कमरे के चारों ओर नजर घुमा कर देखा और तब उसकी नजर कोने में चौकी पर बैठे, चंडी-पाठ करते पुरोहित गंगाराम पर पड़ी तो अचरज से बोला, "यह क्या तमाशा है ?"—पौत्र देख कर चुप रहा, पौत्री मुख पर रूमाल रख कर हँसने लगी और तब सहसा खद्दर का कुरता-धोती पहने एक हृष्ट-पुष्ट, अधेड़ अवस्था का, रूआबदार व्यक्ति और आया वहाँ। यह जमींदार के बड़े पुत्र थे, शत्रुघ्न सिंह—रोगी लड़के के पिता। वृद्ध जमींदार धीरे से बाहर निकले और बहनोई ने शत्रुघ्न से पूछा फिर, "यह क्या तमाशा है ?"

पुरोहित गंगाराम जल्दी-जल्दी चंडी-पाठ कर रहे थे। शत्रुघ्न ने उनकी ओर देख कर हँस कर कहा बहनोई से, "यह हमारे बाबू जी वाला इलाज है।"

"आप लोग अभी तक इन अन्ध-विश्वासों को पाले हैं ? आश्चर्य है !" शत्रुघ्न ने हँस कर कहा, "अरे भाई, आखिर इन पुरोहित लोगों का गुजारा कैसे हो फिर ? यह भी तो एक व्यवसाय है देश में। जैसे और सब चीजों की दूकानें हैं, इनकी भी एक दूकान है। जैसे पैसे से आटा-दाल खरीदते हैं, पैसे से पुण्य भी खरीद लो, आशीर्वाद खरीद लो, रक्षा-कवच खरीद लो। लोग झख मारते हैं और इनके पास आते हैं और फायदा भी उठाते हैं।"

बहनोई ने मानो कोई नई बात सुनी हो, आश्चर्य से बोले, "फायदा भी हो जाता है इस ढकोसले से ? इस हरि ओम् से ? तब तो फिर ये लोग भी समझो एक प्रकार के डाक्टर ही हैं। इन्हें तो कभी डाक्टर बुलाने की जरूरत ही न पड़ती होगी। घर में आयी बीमारी को ये लोग छू-मन्तर कर के उड़ा देते होंगे।"

पुरोहित गंगाराम पाठ करते रहे और सिर झुकाये सब सुनते रहे।

"किस डाक्टर का इलाज चल रहा है बाबू जी ?" लड़की ने प्रसंग

बदला और पिता ने कहा, "डाक्टर मेहता को बुलाया था कल शहर से।"

"डाक्टर मेहता कोई खास होशियार नहीं हैं, डाक्टर बनर्जी को दिखाना चाहिए था।" बड़े लड़के राजेन्द्र ने राय दी।

"ठीक है। डाक्टर बनर्जी हो सही। कितनी फीस लेते हैं बनर्जी?"

"क्या वाहियात बात करते हो यार। ले ले, जितनी चाहे फीस ले। तुम न देना चाहो तो हम देगा मिस्टर। इस बच्चे की तकलीफ तुम गवारा कर सकते हो, रुपया खर्च नहीं करोगे। धन्य हो जी!"

बहनोई की बात पर शत्रुघ्न 'हो-हो' करके हँस रहे थे कि नौकर ने आकर अर्ज किया, "सरकार, बरफ आ गयी, लस्सी तैयार है।" तब वे लोग लस्सी पीने चले गये। रोगी को न तो किसी ने छुआ और न यही पूछा कि कैसी तबीयत है उस की।

बड़े कमरे में, नौकर वह फिर आ खड़ा हुआ सामने और शत्रुघ्न की ओर मुखातिब हो कर बोला, "सरकार, वे लोग बहुत देर से बैठे इन्तजार कर रहे हैं बाहर।"

"अम्याँ, कौन बैठे इन्तजार कर रहे हैं?" बहनोई ने पूछा तो शत्रुघ्न ने कुरसी से उठते-उठते कहा, "पार्टी के आदमी हैं।"

....सन् बयालीस का आन्दोलन छिड़ा तब शत्रुघ्न सिंह हिन्दू-यूनिवर्सिटी से लॉ कर रहे थे। देश-भक्ति के प्रबल प्रवाह में वे भी आन्दोलन में कूद पड़े। बहुत कुछ करा-धरा। वारंट भी कटा उन के नाम, परन्तु बाप की बड़े आदमियों तक पहुँच थी, वारंट वह रद्द करवा दिया किसी तरह। शत्रुघ्न सिंह जेल न जाने पाये, इसका कुपरिणाम आज तक भुगत रहे थे। जेल चले गये होते उस समय तो आज जाने कितना फायदा उठाते। बाप की इस मूर्खता को उन्होंने आज तक क्षमा न किया था। आन्दोलन शान्त हो गया, फिर वह कांग्रेस के मेम्बर, मंत्री, प्रधान बने फिर देश स्वतन्त्र हो गया तो एम० एल० ए० हो गये।

फिर यह दूसरा चुनाव आया तो और ऊपर उठने को थे, मिनिस्टरी के स्वप्न आ रहे थे कि एक धक्का लगा।

जिले का एक अछूत लखनऊ से एम० ए० कर आया। सहसा वह उठ खड़ा हुआ इसी सीट के लिए और उस हरिजन ने धुँआधार दौरा किया सारे जिले का और उस कस्बे में आया वह और उसने सब निम्न जाति के लोगों को इकट्ठा करके सीना तान कर कहा, "भाइयों, जो तुम्हारे साथ बैठने में परहेज करे, उसे वोट दोगे ? वह तुम्हारा कौन है ? कोई नाता-रिश्ता मानता है तुम से ? मैं तुमसे पूछता हूँ, वह तुम्हारे साथ बैठ कर खायेगा कभी ?"

"खाया है—खाया है। हमारे साथ बैठ कर खाया है ठाकुर ने।" कुछ आवाजें आईं चारों ओर से।

हरिजन उम्मीदवार ने क्षण भर रुक कर कहा, "ठीक है। मैं मानता हूँ उसने तुम्हारे साथ खाया है। लेकिन क्या वह अपने बेटा-बेटी का ब्याह करेगा तुम लोगों के बेटा-बेटी से ? अच्छा कहिये तो, उस के लड़की है कोई ?"

"एक लड़की है—एक लड़की है।" कई आवाजें आईं।

हरिजन ने कहा, "तो सुनो भाइयो, पूछो जाकर उससे, क्या वह अपनी लड़की की शादी करेगा मेरे साथ ? मैं पढ़ा-लिखा, हट्टा-कट्टा नौजवान हूँ, काना-कुबड़ा भी नहीं हूँ। मुझ में क्या दोष है ? मुझे दामाद बना ले अपना, लो, मैं बैठा जाता हूँ चुनाव से।"

भीड़ में सन्नाटा छा गया था कि एक बूढ़े चमार ने उठ कर कहा, "ऐसी बातें हम नहीं सुनना चाहते। किसी की इज्जत-आबरू पर धूल मत उछालो। ब्राह्मण-ठाकुर की बेटी से ब्याह करेंगे ! वाह !" और वह वृद्ध चला गया सभा से उठ कर।

हरिजन नेता ने हँस कर कहा, "इन सवर्ण हिन्दुओं ने तुम्हारी आत्मा का हनन कर दिया है भाइयो, पर अब समय आ गया है कि हम

ऊपर उठें, हम ऊपर उठ रहे हैं और अब हम पिछले सब अन्यायों का बदला लेंगे और एक दिन आयेगा कि ये ब्राह्मण-ठाकुर-कायस्थ-बनिये— ये सब अपनी बेटियों को खुशी से हमारे लड़कों के हाथों में सौपेंगे और हमें दामाद बना कर खुश होंगे।"

सभा में 'हो हल्ला' मचने लगा। कुछ लोग उठ कर चल दिये। कुछ लोग तालियाँ पीट रहे थे, कुछ हँस रहे थे। पर अछूत नेता न रुका। वह कहीं भी नहीं रुका। चुनाव में भी नहीं रुका—वही हुआ एम० एल० ए० और शत्रुघ्न टापते रह गये।

तब उन्हें कांग्रेस से—कांग्रेस के सिद्धान्तों से—कुछ घृणा-सी हो गयी। और जब उन्होंने देखा कि इस कांग्रेसी-राज्य में चारों ओर जातिवाद का बोलबाला है और स्वार्थों की छीना-झपटी हो रही है, हर जगह अन्धेरगर्दी मच रही है, तो वे कांग्रेस सरकार का खुल्लम खुल्ला विरोध करने लगे और सोशलिस्ट पार्टी में शरीक हो गये और जनता की भलायी में लग गये। लोग कहते हैं, जनता की भलाई के नाम पर ठाकुर साहब हजारों रुपये खा गये। लोग तो गांधी और नेहरू को भी गालियाँ देते हैं। लोग बकते हैं, बकने दो। कुत्ते भूँकते रहते हैं— हाथी अपनी राह चला जाता है। जमीन्दारी का तो उन्मूलन हो गया। सात सौ बीघा सीर थी और ढाई सौ बीघे बाग थे, अब इन्हीं पर गुजर-बसर करते थे। दो ट्रैक्टर ले लिये थे और अपना बिजली का कुआँ बनवा लिया था। ईख होती थी खेतों में और गेहूँ होता था। इसी ईख के कारण शुगर मिल के शेयर्स लेने पड़े थे और डाइरेक्टर भी बनना पड़ा था। एक 'ग्लास-फैक्टरी' भी खोल दी थी, गरीबों को रोजी देने के लिए और कई कुटीर-उद्योग चला रहे थे और इस प्रकार जनता की भलाई के लिए कांग्रेस छोड़ दी थी और सोशलिस्ट पार्टी में आ गये थे। पार्टी का कार्यक्रम तेजी से चल रहा था और उसी प्रसंग में ये कुछ लोग अभी आये थे। बाहर निकल कर शत्रुघ्न सिंह ने खड़े-खड़े ही पूछा—

"क्यों, क्या निश्चय रहा फिर ?"

सहयोगियों ने कहा, "सब ठीक है। कल पाँच सौ किसान तहसील पर धरना देंगे। आप को ही नेतृत्व करना है।"

"मैं तैयार हूँ।" शत्रुघ्न सिंह ने छाती ठोंक कर कहा, "किसानों के लिए मैं हर तरह का जुल्म सहने को तैयार हूँ। मेरा छोटा बच्चा मौत के मुँह में पड़ा है, लेकिन कोई परवाह नहीं। सब छोड़कर सबेरे हाजिर होऊँगा। तुम लोग निश्चिन्त रहो।"....

चण्डी-पाठ करके पुरोहित उठे तो दिन डूब चुका था। चलने लगे तो घर की धींमरी आकर नैनीताल के फल दे गयी थोड़े से। फिर बाहर आकर खड़े रहे थोड़ी देर कि वृद्ध जमींदार हरपाल सिंह से भेंट हो जाती तो कुछ अर्ज करते। बैठक में सन्नाटा छाया था। शायद सब लोग भीतर खा-पी रहे हों। चल दिये सिर झुकाये। कस्बे की पछाहीं पट्टी पर एक बूढ़ा महाजन रहता था, जो गरीबों के जेवर और बरतन गिरवी रखता था और खरीदता था। पुरोहित उसी के आगे जा खड़े हुए और बगल से एक छोटी-सी पोटली निकाल कर बोले, "कुछ रुपयों की दरकार थी, सेठ।" महाजन ने चाँदी के खड़ुये, चाँदी के छल्ले और बिछुये दीये की रोशनी में लौट-पौट कर देखे और सिर हिला कर बोला, "गिलट है निरी, सबेरे पधारो महाराज, सूरज की रोशनी में देख कर कुछ दाम लगा सकूँगा।"

तन छीन, मन मलीन होकर चले आ रहे थे अपने घर की ओर और सोच रहे थे कि कहाँ से साढ़े सत्तरह रुपये पाऊँ? कौन जतन करूँ? कैसे इंजेक्शन मँगवाऊँ? जो मेरे दीपक को कुछ हो गया तो फिर कैसे जीवित रह पाऊँगा, नारायण! तुम्हारा ही एक अवलम्ब है, दीनानाथ! पुरोहित की आँखों में पानी छलछला आया, रोते गये और चलते गये। चौखट आ गयी अपनी तो अंगोछे से आँख पोंछ कर भीतर घुसे।

आँगन में, लालटेन की मद्धिम रोशनी फैली थी और रसोई घर से हलका-हलका धुआँ उठ रहा था। सामने ही, छप्पर में बालक की खाट थी। वहीं से एक महीन पुकार आयी, "बाबा!"

पुरोहित लपक कर बालक के पास जा पहुँचे और उसके माथे पर हाथ रख कर ममता से बोले, "बेटा, अब कैसा जी है तेरा, तबियत ठीक है बेटा ?"

दीपक ने दादा का हाथ पकड़ कर मचल कर कहा, "मुझे भूख लगी है बाबा, खाने को दो। माँ मुझे रोटी नहीं देती।"

जाने कब चुपचाप पीछे आ खड़ी हुई थी। हौले से बोली स्नेह-भरी वाणी में, "तब से खाने की रट लगाये है। बुखार तो एकदम हलका पड़ गया है।"

"हे नारायण, हे प्रभु, हे दीनानाथ!" गंगाराम से और कहा नहीं गया कुछ। भीतर आले में भगवान् की मूर्ति विराज रही थी। तब से दस बार उस मूर्ति के आगे माथा टेंक गयी थी। ससुर को विह्वल देख कर अब फिर दौड़ कर उन्हीं करुणामय के आगे अपना शीश रख कर रो कर कहा, "और कुछ नहीं चाहती स्वामी! यह मेरा दीपक बुझ न जाय। और चाहे जितनी विपदा दो, चाहे जितनी परीक्षा लो प्रभु, मैं हारूँगी नहीं।"

शान्तिस्वरूप, दीपक का पिता, बहुत छोटा था, तभी अचानक एक दिन की बीमारी में उसकी माँ चल बसी। पिता ने जाने कितने कष्टों से पाल-पोस कर उसे खड़ा किया। फिर वह पढ़ने गया परदेश। फिर वह सयाना हुआ, शास्त्री हुआ, बी० ए० हुआ। फिर वह तहसील के इण्टर कालेज में अध्यापक हुआ। कितनी शीघ्रता से, कितनी लगन से उसने सब किया और जब वह अपना पहला वेतन लेकर घर आया तो पिता के चरणों में वह छोटी-सी धनराशि रख कर बोला, "आज से आपकी

पुरोहिताई समाप्त है दादा, प्रार्थना कर रहा हूँ, आज से अब यह पोथी-पत्रा लेकर कहीं भी मत जाइएगा, चाहे लखपति ही बुलाये। वचन दो दादा !"

गंगाराम की आँखों से छर-छर करके आंसू बह चले। एक बार कहना चाहा, "तुझे पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ बेटा ! मेरी सात पीढ़ियाँ तर गयीं।" पर कुछ बोला ही नहीं गया। बेटे की पीठ पर हाथ फिराते रहे और रोते रहे।....इसके बाद, शत्रुघ्न सिंह की पत्नी ने अपने मायके की सलोनी ब्राह्मण-कन्या जसोदा से शान्तिस्वरूप का ब्याह करा दिया। वह बहुत ही भली नारी थी और जसोदा को 'छोटी बहिन' करके मानती थी। उसी नाते से जसोदा शत्रुघ्न को जीजा कहती थी। जसोदा की वह 'जीजी' मर गयी चौथी सन्तान के प्रसव-काल में। देश-सेवा में लगे शत्रुघ्न ने फिर और शादी न की।

तब एक घटना हुई। शत्रुघ्न के माता-पिता चारों धाम की यात्रा के लिए निकले और शान्तिस्वरूप के आग्रह पर गंगाराम पुरोहित भी उनके साथ हो लिये। पीछे शान्तिस्वरूप अचानक रोगी हुआ और तबियत ज्यादा खराब होने लगी तो जसोदा ने घबरा कर 'जीजा' को बुलाया। शत्रुघ्न खुद शहर गये। डाक्टर को लाये। रात को खुद जाग-जाग कर दवा दी। पौ फट रही थी तब शान्तिस्वरूप ने जसोदा के करुण चेहरे पर दृष्टि जमा कर हौले से कहा, "सुनो जसोदा !" पति के मुरझाये मुख पर झुक कर जसोदा कातर होकर पूछने लगी, "क्या कहते हो ?" पर शान्तिस्वरूप ने कुछ न कहा। वह सदा के लिए चुप हो गया। पुरोहित गंगाराम तीर्थ करके लौटे तब पुत्र की चिता की धूल तक उड़ चुकी थी। चिता की वह धूल जसोदा के बालों में भर गयी थी और कलेजे पर लिपट गयी थी और चेहरे पर छा गयी थी, जिस चेहरे की खुशियों को फाँसी लगा दी गयी थी और जिस चेहरे की मुसकराहटें कत्ल कर दी गयी थीं। पुरोहित गंगाराम लौटे तो जसोदा

का यह हाल था कि वह रोती न थी और कुछ बोलती न थी, वह मानो गूँगी हो गयी थी।

दुनिया बदल गयी गंगाराम की और महीने बीतने लगे, फिर पूरा साल बीत गया और दूसरा साल आ गया। वह पोथी-पत्रा, जिन पर धूल की परतें जम गयी थीं, गंगाराम ने फिर उठा लिया था और फिर पुरोहिताई करने दर-दर भटकने लगे थे।

जब यों यह बेरहम और बेहया जिन्दगी बीत रही थी और जब सावन की एक रात को पुरोहित गंगाराम पड़ोस के किसी गाँव में व्याह कराने गये हुए थे और घर में कोई दूसरा न था, अचानक ठाकुर शत्रुघ्न सिंह इस घर के आँगन में आ खड़े हुए। जसोदा अपने बच्चे को लिए खाट पर लेटी थी और मन उसका जाने कहाँ बादलों के साथ उड़ता फिर रहा था। जीजा को सामने खड़ा देख, वह हड़बड़ा कर उठ बैठी और कलेजा धड़कने लगा उसका। बीसियों बार जीजा उसके घर आये थे, पर आज की बादलों भरी इस रात का आना जैसे सब से अलग था। शत्रुघ्न सिंह खुद खाट पर बैठ गये और जसोदा को सामने बिठा कर सब स्पष्ट करके कहा तो जसोदा रोने लगी अँधेरे में और रो-रो कर कहने लगी, "मुझ पर रहम करो जीजा, ऐसी बातें न कहो। मैं इसी तरह जिन्दगी गुजार दूँगी, अपने बच्चे का मुँह देख कर, अपने ससुर की छाया में।"

शत्रुघ्न ने शान्त स्वर में कहा, "अच्छी तरह सोच लो जसोदा, सोच कर मुझसे कहना। यह बुड्ढा आखिर कब तक जिन्दा रहेगा? तुम्हारे माँ-बाप भी नहीं रहे और दुनिया तुम्हें सरलता से यह जवानी नहीं काटने देगी। इससे यह लाख गुना अच्छा है कि तुम मेरी हो कर रहो। बाकायदा तुम से शादी करूँगा। शहर वाले अपने मकान में तुम्हें रखूँगा। इस बच्चे की परवरिश करूँगा। तुम्हारे जो सन्तान होगी, मेरी सम्पत्ति में उसका हक होगा। जाति-पाँति को आज कल पूछता ही कौन

है ! मैं तुम्हें वह सब दूँगा, जो तुम्हें कभी न मिला। जिन्दगी का वह सुख तुमने देखा ही कहाँ हैं ? सोच लो जसोदा, अच्छी तरह सोच कर जवाब दो।"

तब जसोदा ने आगे बढ़ कर जीजा के दोनों पैर पकड़ लिये कस कर और दीन-कातर वाणी में कहा आँखों आँसू बहाते, "तुम्हारे पैर छू रही हूँ जीजा, दया की भीख माँग रही हूँ। अब चले जाओ यहाँ से।"

शत्रुघ्न उठ कर खड़े हो गये। एक साँस खींच कर कहा, "अच्छी बात है। चला जाता हूँ। लेकिन एक दिन आयेगा, तुम हार जाओगी जसोदा और तब खुद····"

····शत्रुघ्न बहुत गम्भीर थे। पर आदमी अपने भीतर का सब किसी के आगे प्रकट करने में सुख मानता है। एक लंगोटिया यार था शहर में। उस पर बहुत विश्वास करते थे। उसे सब सुना दिया। उसी के साथ कभी अँधेरी रातों में बैठ कर पीते थे और पी कर आदमी जो कुछ करता हैं, वह सभी करते थे। उस यार ने एक दिन बड़ी प्यारी बात कही सुरुर में। वह यार बोला, "कहो भाई जहाँगीर, तुम्हारी नूरजहाँ का क्या हाल है ? नहीं-नहीं किये जा रही है अभी ? शेरअफगन को तो तुमने दोस्त, ऐसी सफाई से हटा दिया कि साला खुदा भी नहीं जान सका। वाह रे मेरे शत्रुघ्न !"

कमरे में और कोई न था। शत्रुघ्न ने सिर को झटका दे कर कहा, "चुप रह यार, दीवालों के भी कान होते हैं। नूरजहाँ मेरी हो कर रहेगी—तू समझता क्या है ? मैं उसे बचपन से प्यार करता आया हूँ—कुँआरी थी वह तब से, और मैं दुनिया की हर हसीन औरत को उसके आगे हेच मानता हूँ और एक दिन वह मेरी होगी। हाँ !"

····पूजा-पाठ और कीमती दवाइयों के बावजूद दूसरे दिन जमींदार के छोटे पौत्र की तबियत और ज्यादा खराब होने लगी तो बड़ा पौत्र राजेन्द्र फूफा जी की कार भगाता शहर पहुँचा और उधर से डाक्टर

बनर्जी को ले आया घण्टे-भर में। डाक्टर के आने से पूर्व, वृद्ध जमीन्दार हरपाल सिंह ने पुरोहित गंगाराम से आकर कहा, "गंगाराम, सारी शक्ति लगा कर आराधना करो। आज तुम आसन से हिलो मत। अब अखंड-पाठ चलेगा चौबीस घण्टे का। तुम जानते हो, देवता के आगे मैं दवाओं पर विश्वास नहीं करता। मुझे भगवती पर अटल श्रद्धा है। मेरी अटूट श्रद्धा टूटने मत देना गंगाराम। अब उठना मत आसन से। और सब कुछ बिसार दो आज। पुकारो भगवती को, मेरे पोते की रक्षा करें। भरपूर दक्षिणा दूँगा। अपने मन का जोर लगाओ, पुरोहित !"

"ऐसा ही होगा सरकार !" गंगाराम ने सीना उभार कर कहा, "सब कुछ बिसार कर भगवती को पुकारूँगा।"

डाक्टर बनर्जी आये तो बालक होश में न था। ऐसा सीरियस केस देख कर एक बार चौंके, एक बार निराश हुए, फिर सारे जतन से उसकी चिकित्सा में लग गये।

शत्रुघ्न सिंह ने पार्टी के आदमियों को वचन दिया था। वचन की रक्षा के लिए, दिन निकलते ही वे किसानों के उद्धार-हेतु चले गये थे।

लगातार दो-तीन इंजेक्शन लगा कर डाक्टर बनर्जी ने बालक की नब्ज देखी और फिर माथे का पसीना पोंछ कर राजेन्द्र के फूफा से कहा, "खतरे को पार कर गया पेशेंट।" तो सबने सन्तोष की साँस ली। डाक्टर बनर्जी ने अब तक ध्यान न दिया था। गुनगुनाहट सुन कर अब इधर देखा तो फौरन ही फूफा से पूछा अंग्रेजी में "यह क्या हो रहा है ?" फूफा ने अंग्रेजी में ही उत्तर दिया, "बेवकूफी।"

राजेन्द्र पास ही खड़ा था। उस ने बी० ए० में संस्कृत ली थी और संस्कृत में ही सबसे अधिक नम्बर पाये थे। उसने भी अंग्रेजी में कहा, "न तो यह आदमी शुद्ध उच्चारण ही कर रहा है और न किसी श्लोक का अर्थ ही जानता है। तोते की तरह रट रहा है।"

डाक्टर बनर्जी ने एक बार फिर नब्ज पकड़ी और आश्वस्त होकर बोले; "विज्ञान के इस युग में, अभी तक यह जादू-टोना हिन्दुस्तान में चल रहा है। जाने कब आँख खुलेगी लोगों की!"

फूफा जी ने अपनी राय दी, "सरकार को कानून बना कर इन चीजों को रोकना चाहिए।"

डाक्टर बनर्जी ने कहा, "अभी कुछ समय लगेगा देश को सुधरने में। मेरा 'टी-टाइम' हो गया भाई!"

"सॉरी!" कहता हुआ राजेन्द्र तेजी से बाहर को चला तो सहसा दरवाजे पर खड़ी एक मैली-कुचैली बुढ़िया से टकरा गया। यह जसोदा के पड़ोस में रहने वाली अहीरिन थी। शाही कमरे में डरते-डरते उझक रही थी। फूफा ने देख कर रूखे स्वर में पूछा, "क्या है?" तो डरती-डरती बोली, "पुरोहित जी को बहू ने बुलाया है। बच्चा का जी ठीक नहीं है।" फूफा ने घृणा से मुँह फेर लिया। पुरोहित ने बुढ़िया की ओर देखा और हाथ हिला कर बतला दिया कि वे उठ नहीं सकते, कुछ सुन नहीं सकते, सब कुछ बिसार दिया है और भगवती को पुकार रहे हैं कि जमींदार के पौत्र की रक्षा करें।

दीपक बार-बार खाने के लिए जिद करने लगा। घर में दूध नहीं, दूध के लिए पैसे भी नहीं। क्या दे खाने को? जसोदा ने हार कर नैनीताल वाले फल दे दिये उसे। सोचा कि बुखार में फल भला क्या नुकसान करेंगे। पर घण्टे भर बाद ही जब दीपक की साँस उखड़ने लगी और वह कराहने लगा कष्ट से और छाती में दर्द भी बतलाने लगा तो जसोदा ने घबरा कर वैद्य को बुलाया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की डिसपेंसरी का वह वैद्य बेचारा फौरन उठ कर चला आया और उसने आला लगा कर देखा तो आँखें चढ़ा कर बोला, "इसे तो निमोनिया हो गया भाभी, क्या कुछ खाने को दे दिया था?"

जसोदा के होश उड़ गये। काँप कर बोली, "फल दे दिये थे।"

"गजब कर दिया भाभी, तुमने बालक को खुद मौत के मुँह में ढकेल दिया !"

जसोदा ने घबरा कर अहीरिन दौड़ाई, पर ससुर न आये। वैद्य बहुत सहृदय था। वह स्वयं दवा तैयार करके दे गया और दो बार फिर चक्कर लगा गया। पर दवा का कुछ असर न हुआ और दीपक की हालत खराब होने लगी तो उसने फिर अहीरिन को दौड़ाया ससुर के पास।....

यहाँ डाक्टर बनर्जी ने केस सम्हाल लिया और दीये जलती बेला जमींदार के पौत्र ने आँखें खोल दीं और पलंग पर उठ कर बैठा और दूध पिया थोड़ा-सा तो सबके चेहरे खुशी से चमक उठे। डाक्टर बनर्जी ने शान्त भाव से कहा, "आज की रात यह गहरी नींद सोयेगा और मैं समझता हूँ, सुबह तक बुखार इसका कतई उतर जायेगा और कुछ खा भी सकेगा। अब मेरे जाने का इन्तजाम कीजिये।"

पर फूफा जी ने उन्हें जाने न दिया। रात की भी फीस देंगे, रहें अब डाक्टर साहब, सुबह का पथ्य देकर जायें।

ये लोग कमरे से उठ गये तो वृद्ध हरपाल सिंह ने पुरोहित के पास आ कर कहा, "सब भगवती की कृपा है, मैं डाक्टरी नहीं मानता। आज सारी रात अखंड पाठ करो गंगाराम! भरपूर दक्षिणा दूँगा। हिलना मत आसन से। माँ की दया का प्रभाव प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।"

रोगी बालक को जाने कब नींद आ गयी थी। आज वह बहुत श्रान्त-सा होकर गहरी नींद सोया था। घर के और सब लोग भी सो गये। डाक्टर भी सो गये थे जाकर। उस कमरे में केवल एक दासी बैठी ऊँघती रही और पुरोहित गंगाराम स्थिर मति होकर अखंड चण्डी-पाठ करते रहे कोने में आसन पर बैठे।

डाक्टर ने निषेध कर दिया था, "अब इस कमरे में कोई न आने

पाये। बुढ़िया अहीरिन बाहर फाटक से लौट गयी और लौट कर जसोदा से कह गयी, "पुरोहित जी के पास किसी ने जाने ही नहीं दिया बहू!"

रात को साढ़े दस बजे वैद्य फिर आया तो दीपक से साँस नहीं ली जा रही थी। ऐसी नाजुक हालत देख कर किंकर्तव्यविमूढ़ वैद्य ने जसोदा से कहा, "भाभी, शहर के सबसे बड़े डाक्टर आज यहीं हैं। वे तुम्हारे दीपक की प्राण-रक्षा कर सकते हैं। ठाकुर साहब से—अपने जीजाजी से जाकर कहो भाभी और डाक्टर बनर्जी को बुला लो।"

एक खुराक दवा और चटा कर वैद्य चला गया।

जसोदा भागी-भागी भगवान् की मूर्ति के आगे आयी और वहीं आले में सिर पटक कर, करुण क्रन्दन करके भगवान से कहने लगी, "इतनी कठोर परीक्षा मत लो नारायण! मेरे दीपक को सामने खड़ा करके मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हो देवता? अब मैं हार जाऊँगी, अब बल नहीं रहा—अब और नहीं सह पाऊँगी करुणा निधान!" और बार-बार माथा मारने लगी भगवान् के चरणों में।

सहसा दीपक ने चिल्ला कर कहा, "माँ, मेरी किताबें लाओ, माँ, मैं पढ़ने जाऊँगा। मेरा इम्तहान है माँ!"

जसोदा ने एक बार पास आ कर बालक का मुख देखा फिर बाहर को भागी। उस बियाबान रात में जसोदा सारी राह पागलों की तरह भागती गयी—भागती गयी और जीने से ऊपर चढ़ कर शत्रुघ्न के निजी कमरे के आगे आ खड़ी हुई और बन्द किवाड़ों पर पूरी ताकत से मुट्ठियाँ मारीं उसने।

कमरा खुल गया। जसोदा हाँफती हुई खड़ी थी और फटी-फटी आँखों से सामने खड़े शत्रुघ्न को देख रही थी। सारे दिन की थकान और उदासी दूर करने के लिए अभी-अभी उन्होंने पीकर बोतल और

गिलास उठाये थे और अब आँखों के डोरे लाल थे और दुनिया रंगीन दीख रही थी। दृढ़ स्वर में बोले, "आओ, भीतर आ जाओ।" और कठपुतली-सी जसोदा भीतर आकर उनके पलंग पर बैठ गयी। तब शत्रुघ्न ने उसके पास ही बैठ कर उसके चेहरे पर अपलक दृष्टि जमा कर कहा, "मैं जानता था, तुम आओगी। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम क्यों आयी हो—किस लिये आयी हो। आखिर तुम हार गयीं न! अब आज अपनी मर्जी से आधी रात को मेरे पास आयी हो और मेरे कमरे में, मेरे पलंग पर, मेरी बगल में बैठी हो यहाँ। अब तैयार हो न, अपना सब देने के लिए और मेरा सब लेने के लिए? यह तुम्हारी बेचैनी, यह तुम्हारी घबराई-घबराई नजर, ये लम्बी-लम्बी साँसें, यह अकुलाहट! बहुत सुन्दर लग रही हो। लजाओ मत जसोदा, एक बार तुम्हारे मुँह से इतना और सुनना चाहता हूँ कि, 'हार गयी हूँ और अब तुम्हारी हूँ।' कहो जसोदा, कहो, कहो!"

जसोदा ने एक बार शत्रुघ्न की आँखों में आँखें डाल कर देखा और फिर हृदय की, आत्मा की सारी शक्ति लगा कर चिल्ला कर कहा, "नहीं।"

फिर वह तीर की तरह भागी वहाँ से।····

····नित्य की तरह दिन निकला। जमींदार के पौत्र का बुखार बिलकुल उतर गया था। डाक्टर बनर्जी उसे दो बिस्कुट खिला कर शहर लौट गये। हरपाल सिंह स्नान करके सीधे इधर ही चले आये और पौत्र को एक दस रुपये का नोट देकर बोले, "पंडित जी को दो बेटा, आओ गंगाराम।"

पुरोहित ने अपने दोनों हाथ फैला दिये। लड़के ने नोट छोड़ दिया अंजलि में। पुरोहित ने आशीर्वाद दिया तब, "जुग-जुग जियो राजा, जुग-जुग जियो!"

बीच राह में पुरोहित भाग नहीं सकते थे। जितनी शीघ्रता से हो सकता था, पैर बढ़ाते आये और भगवती को सुमिरते आये अपने दरवाजे तक।

....दरवाजे पर जसोदा खड़ी मिली। बिलकुल शान्त, स्थिर, अचल हो कर खड़ी थी किवाड़ से सटी और चेहरा उसका जर्द था। गंगाराम ने एक डग भरा, सामने आये, अकुला कर पूछा, "दीपक कैसा है बेटी ?"

तब बेटी जसोदा ने सफेद ओठों से कहा, बिलकुल शान्त स्वर में "दीपक मर गया, जाइये, कफन ले आइये।"

अप्रत्याशित

शाम होने को थी और मेरे घर एक अतिथि आये हुए थे। मेरे दो साथी और आ पहुँचे और बात चल रही थी, जब श्रीनाथ आया। उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया और रामनिवास ने, जो हम चारों में बड़ा था, बड़ी शान से अपनी बात समाप्त करके कहा—'जी हाँ, चीनी दार्शनिक की उक्ति सोलह आना सच है, 'मनुष्य स्वभाव से नीच होता है।'

इस सिद्धान्त पर सभी ने एकमत हो कर संतोष की साँस ली, तो अचानक हरस्वरूप ने श्रीनाथ के कंधे पर हाथ मार कर कहा, 'सुन लिया बेटा, मनुष्य स्वभाव से नीच होता है, नीच !'

श्रीनाथ हम सबसे छोटा है। उसने हँस कर कहा, 'मनुष्य की इसी नीचता की कहानी सुनाऊँ एक, तुम लोग कहो तो। जनता की क्या राय है ?'

'जनता तेरी कहानी सुनना चाहती है। बोल जा सपाटे से।'—रामनिवास धोक लगा कर बोला।

तब श्रीनाथ मेरी ओर मुखातिब हो कर कहने लगा, 'बरेली-कालेज में पढ़ता था, तब की बात है। तुम तो देख आये थे मेरा वह बोर्डिङ्ग। उसी बोर्डिङ्ग के पिछवाड़े कोठी थी एक जिसके ऊपरी हिस्से में गणित के प्रोफेसर बनर्जी रहते थे और उनकी एक, लड़की थी। लड़की वह बहुत हसीन थी और सारा बोर्डिङ्ग उसे जानता था और हम लोग उसकी एक झलक पाने के लिए छत पर चक्कर काटते रहते थे। स्कूल आती-जाती मिल जाती तो देर तक आँखें फाड़-फाड़ कर हम देखते रहते। और हमारा एक साथी श्यामलाल उसके पीछे बिलकुल दीवाना हो गया था।'

हरशरण ने चिल्ला कर पूछा, 'तू यार, कोई लैला-मजनूँ का किस्सा सुनायेगा क्या ?'

श्रीनाथ ने सिर हिला कर कहा, 'नहीं-नहीं, यह प्रेम कहानी नहीं है भाइयो, उस लड़की की किसी लड़के से कोई बात नहीं चली। बात क्या चलती! देखती ही न थी किसी की ओर। अपने पैरों पर नजर जमाये तो चलती थी! चाहे कितना ही खाँसो, जोर से हँसो-रोओ, सीटी बजाओ, उसके पलक न उठते थे और फिर प्रोफेसर का डर लगता था। बड़ा जालिम था वह। सारा कालेज उससे थर-थर काँपता था। तो साहब, लड़की थी वह पड़ोस में और हम सब थे और कुछ हो नहीं रहा था। अच्छा नहीं लग रहा था कि अचानक एक दिन एक छोटा-सा वाकया हो गया और हम लोग खुश हुए।

'अब सुनिये आगे। एक साथी—क्लासफेलो थे हमारे। नाम तो उनका कन्हैयालाल शुक्ल था, पर वे कालेज-भर में 'मिस्टर टिड्ढा' के नाम से ही मशहूर थे। 'टिड्ढा' कह कर बाकायदा आप उनसे बात कर लीजिये, कोई उज्र नहीं। लम्बे थे, पतले थे, साँवले थे और चेहरा-मोहरा कुछ ऐसा था कि देख कर लगता था कि अभी-अभी पिट कर चले आ रहे हैं शायद। सज्जन ऐसे थे कि कुछ भी कह लो, बोलते ही न थे। अपने कमरे में उन्होंने स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी की तसवीरें टाँग रखी थीं। एक से ब्रह्मचर्य का आदर्श पालते, दूसरे से सत्य और अहिंसा का। उन्हें दुनिया से कोई सरोकार न था। बस पढ़ते और पढ़ते रहते। गणित हमने भी ले रक्खी थी और टिड्ढा ने भी। कोई दिन न जाता होगा कि बनर्जी क्लास में उन्हें 'ईडियट' न कहता हो, पर टिड्ढा वीतराग थे।'

लेकिन उस दिन जो हम लोग छत पर चढ़े तो देखते हैं कि टिड्ढा किताब हाथ में लिये टहल-टहल कर पढ़ रहे हैं।

'टिड्ढा, तुम यहाँ! छत पर!' हमने अचरज से पूछा।

शान्त भाव से बोले, 'हम तो रोज आते हैं यहाँ।'

'रोज ? हमने तो तुम्हें कभी न देखा। कब आते हो ?'

'जब तुम लोग नहीं रहते हो तब।'

'अरे, पूरा घुटा हुआ है! दिखती है न रोज ?'

'कौन दिखती है ?'

'चिड़िया !—कैसा बन रहा है! अबे, वह प्रोफेसर की छोकरी, मणिमाला,—अब समझा ?'

शान्त भाव से बोले, 'हाँ, परसों दिखी तो थी।'

'दिखी थी !'—सब ने चिल्ला कर पूछा।

'हाँ दिखी, बन्दर किताब उठा लाया था उसकी। यहाँ छज्जे पर डाल गया था। सो लेने आयी थी। मुझसे बोली—'

'तुमसे बोली !'—सब ने चिल्ला कर पूछा।

'हाँ, बोली।'

'क्या बोली ? जल्दी कहो !'

'बोली—मेरी किताब इधर फेंक दीजिये।'

'तुमने क्या किया ?'

'हमने किताब फेंक दी उधर, और वह किताब ले कर चली गयी।'

'अरे नालायक, अरे चुगत! अरे बेवकूफ !'—सब गालियाँ दिये जा रहे हैं और टिड्ढा शान्त खड़े हैं।

और दूसरे ही दिन हम तीन पड़ोसी गमगीन चेहरे लिये टिड्ढा के कमरे में घुसे और उनके अगल-बगल बैठ गये और एक ने साँस खींच कर कहना शुरू किया, "तुम किस कदर जालिम हो टिड्ढा! वह फूल-सी कोमल मणिमाला तीन दिन से उपवास किये पड़ी है और तुम पढ़ाई में जुते हो, भर पेट खाते हो और नींद भर सोते हो!'

'उपवास कर रही है ? किस लिए ?'—चौंक कर बोले।

साथी ने साँस खींच कर कहा, 'यह तुम्हारे रोज-रोज छत पर चढ़ने का नतीजा है। प्रोफेसर बनर्जी ने कहीं उसकी शादी तय की है और वह जिद किये पड़ी है कि शादी होगी अगर तो तुम्हारे साथ, नहीं तो अनशन करके अपनी जान दे देगी !'

'तुम लोग मुझे बनाने आये हो !'—उदासी से बोले।

'तुम्हारे सर की कसम टिड्ढा, मजाक बिलकुल नहीं है। मणिमाला को हम लोग भी स्नेह करते हैं। इसीलिए कहने आये हैं कि उसके प्राणों की रक्षा कर लो। तुम्हें यकीन न हो तो खुद प्रोफेसर से पूछ लो। बल्कि कहो उससे कि यह अन्याय है, अत्याचार है। मानवता के विरुद्ध है। इनसान-इनसान सब बराबर हैं। आखिर तुममें क्या कमी है? क्यों नहीं करेंगे तुम्हारे साथ लड़की की शादी? कोई भी कारण नहीं है। फिर लड़की पर इतना जुल्म क्यों कर रहे हैं? किस लिए? इस अन्याय का विरोध करो टिड्ढा, डट कर विरोध करो। तुम महात्मा गाँधी के अनुयायी हो।'

'परन्तु मेरा ब्रह्मचर्य—'

'अरे तुम्हारा ब्रह्मचर्य कौन तोड़ता है! तुम प्रोफेसर को सिर्फ इतना जतला दो कि तुम इस शादी से सहमत हो। बस! क्या तुम एक प्राणी की आत्म-रक्षा के लिए इतना भी नहीं कर सकते? कायर! स्वार्थी!'

टिड्ढा ने सीना उभार लिया और दृढ़ स्वर में बोले—'अच्छी बात है। मैं कल प्रोफेसर बनर्जी से बात करूँगा।'

और जनाब, टिड्ढा ने दूसरे दिन घण्टा खतम होते ही रुक कर प्रोफेसर से कहा—'सर, कुछ कहना है।'

हम लोग वहीं ओट में खड़े सुन रहे थे।

प्रोफेसर रुका तो टिड्ढा ने फौरन कहा, 'सर, आपकी लड़की, सुना है, तीन दिन से अनशन कर रही है—'

'यू ईडियट, क्या बकते हो ? मेरी लड़की क्यों अनशन करेगी ?'

'सर, सुना है, मेरे ही कारण—'

'तुम्हारे कारण ! तुम्हारा क्या कारण है ?'

'सर, सुना है, शादी के लिए—'

'तुम्हारे साथ ?'

'यस् सर !'

प्रोफेसर का चेहरा क्षण-भर में लाल हो उठा। उसकी ज़ुबान से कोई शब्द निकल नहीं पा रहा था, जलती नजर से टिड्ढा को देख रहा था और क्रोध से उसके होंठ काँप रहे थे। पर टिड्ढा शान्त थे और शान्त भाव से आगे बोले 'सर, यह अन्याय है, अत्याचार है। मानवता के विरुद्ध है। इनसान-इनसान सब बराबर हैं। और सर, मैं एम० ए० अवश्य करूँगा। और पचास बीघा खेत है मेरे पास। आपकी लड़की को कभी कोई कष्ट न होगा। लेकिन सर, शादी मैं अभी नहीं कर सकूँगा। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पलन करके ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करूँगा। आप अपनी लड़की को समझा दीजिये, तब तक उसे प्रतीक्षा करनी होगी। वैसे आप चाहें तो सम्बन्ध अभी पक्का हो सकता है। पूरे पचास बीघा खेत है मेरे पास, स्मरण रखिये और सर, आप कहें तो इस विषय में मैं अपने पिता को चिट्ठी लिखूँ, लिखूँ सर ?'

तब प्रोफेसर ने क्रोध से थर-थर काँपते हुए कहा, 'अब आगे अगर तुमने कुछ कहा तो मैं अभी तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा ! बेवकूफ ! बदतमीज ! चले जाओ सामने से !'

और टिड्ढा शान्त भाव से चले आये।

दूसरे दिन टिड्ढा के पास मणिमाला की सुख-दुःख भरी 'पाती' आयी। हमारे साथी ने लिखा था, मणिमाला के अक्षरों में—'पिता ने तुम्हारा अपमान किया है। मेरे लिए तुमने सब सहा। मैं ऐसी अभागिन हूँ। पर यह सुन कर मैं फूली नहीं समायी कि तुम मुझे अपने

चरणों में स्थान देने को तैयार हो। तुम अपना ब्रह्मचर्य-व्रत पूरा कर लो, मैं प्रतीक्षा करती रहूँगी। अन्त में हमारी विजय होगी, दुनिया हारेगी, प्रेम जीतेगा। अब मैं अनशन तोड़ दूँगी। परन्तु एक प्रार्थना है, बाजार से, कल्लू हलवाई की दूकान से, शुद्ध घी का मीठा लेकर भगवान् के मन्दिर में थोड़ा-सा चढ़ा देना, बाकी मुझे भिजवा देना, उसी मीठे से अनशन तोड़ूँगी। लेकिन कैसे भेजोगे मीठा? दो पहर के बाद, दो बजे के करीब आना और हमारे जीने में जो ताक है, उसी में रख देना। मैं आ कर ले जाऊँगी और इस पत्र का उत्तर देना। अपने दिल की बात लिखना और मेरी चिट्ठी की बात किसी से कहना मत, तुम्हें मेरे प्राणों की सौगंध है....'

सोचा था कि टिड्ढा इस विषय में हम लोगों से जरूर कंसल्ट करेगा और चौकसी रक्खेंगे, और ज्यों ही यह मीठा रख कर लौटेगा, फौरन उठा लायेंगे।

पर टिड्ढा से शायद सब्र न हुआ और वह एक बजे ही करीबन आधा सेर-तीन पाव मीठा ले कर जीने के ऊपर जा पहुँचा और मीठा रख कर धीरे-धीरे किवाड़ थपथपाने लगा। होनहार की बात थी कि उस दिन प्रोफेसर कालेज न गया था। वह फौरन निकल आया भीतर से और इन्हें देखा और मीठा देखा वह, और फिर इन्हें देखा तो भागने को हुए। रोक लिया डाँट कर और भीतर ले गया और बाकायदा कुरसी पर बिठा कर पूछा कि—यह क्या हरकत है आज? मीठा क्यों लाये हैं यह? तो टिड्ढा सिर डाले बोला, 'मणिमाला के लिए लाया हूँ!' सुन कर प्रोफेसर ने आव देखा न ताव, पास की खूँटी से छड़ी उतार ली पलक मारते, और सड़ाक्-सड़ाक् इन्हें पीटने लगा तो कुरसी के चारों ओर गोल-गोल नाचते, छड़ियों की मार खाते, टिड्ढा जल्दी-जल्दी कहने लगे, 'सर, उसने चिट्ठी भेजी थी। सर, उसी ने मीठा मँगवाया था।'

प्रोफेसर ने मारना रोक कर पूछा, 'कहाँ है चिट्ठी ?'

तो पीठ सहलाते बोले, 'सर, चिट्ठी वह मैं आप को नहीं दिखला सकता ।'

'क्यों नहीं दिखला सकते ?'—प्रोफेसर ने चिल्ला कर पूछा ।

बोले, 'सर, उसने मुझे अपने प्राणों की शपथ दिला दी है ।'

और ठीक इसी समय मणिमाला आ गयी स्कूल से । शायद उसका पीरियड खाली था । पिता ने उसे देखते ही सवाल किया क्रोध से, 'इस लड़के को तुमने चिट्ठी लिखी है ? मीठा मँगवाया है ? बोलो, जवाब दो !'

लड़की ने आँखें फाड़ कर कहा, 'चिट्ठी····मीठा····मैंने····इसको ! यह कौन है पापा ? मैं तो कुछ भी नहीं जानती ! सच कहती हूँ पापा, मुझे कुछ भी नहीं मालूम पापा, सच कह रही हूँ—' और उसकी आँखें छलछला आयीं तो प्रोफेसर ने दो-चार छड़ी इनके और रसीद कीं और घृणा से कहा, 'बदमाश, बदतमीज, ग्यट-आउट् !' और मीठा वह उठा कर फेंक दिया टिड्ढा के आगे और टिड्ढा ने धीरे से वह मीठा उठा लिया और चले आये चुपचाप ।

शाम को खुद ही पूरा किस्सा सुनाया तो हम लोगों ने सहानुभूति प्रकट की और पूछा, 'मीठा कहाँ गया वह ?'

'यह रक्खा है ।'—धीरे से बोले ।

'अब इसका क्या करोगे ?'

'तुम लोग खा लो ।'—धीरे से बोले ।

हम लोग वह शुद्ध घी का मीठा खाने लगे तो टिड्ढा ने दबे स्वर में कहा, 'आज मेरा हृदय बहुत दुःखी है । लड़कियों के प्रति मेरी धारणा यों ही सुन्दर न थी । अब तो मुझे हर लड़की से घृणा-सी हो गयी । तुम लोग देख रहे हो, कितना छल किया इस मणिमाला ने !

पिता के सामने साफ मुकर गयी ! परन्तु आज मुझे एक शिक्षा भी मिल गयी—'स्त्रियों का विश्वास न करो।'

हम लोगों ने सहमति प्रकट की, 'लड़कियाँ बड़ी जालिम होती हैं ।' और मीठा खा कर चले आये ।

एक-दो दिन इस काण्ड की चर्चा रही। इसके बाद टिड्ढा फिर अपनी पढ़ाई में जुट गये। समाधि लग गयी उनकी और जब तक वहाँ रहे फिर कभी वे बोर्डिङ्ग की छत पर न चढ़े ।

परीक्षा आ गयी सिर पर और परीक्षा दे कर हम सब तितर-बितर हो गये । फिर कभी टिड्ढा न मिले हमें देखने को ।

बीच की ये छः-सात साल बीत गये देखते-देखते और जिन्दगी अब हम लोगों की यों हो गयी है, गोया हम कोई जानवर हों, बेजुबान और बेबस । हम क्लर्कों की यही तो तसवीर है !

'और जनाब, वह टिड्ढा, जो इतना मासूम, इतना बौड़म और कभी कुछ न था—वह टिड्ढा, आज लखनऊ में राज कर रहा है ! किसी मिनिस्टरी में आफिस सुपरिन्टेंडेंट है और बढ़िया शानदार बँगले में रहता है और कार पर घूमता है और हर महीने उसका बैंक-बैलेंस बढ़ रहा है और बढ़ता ही जाता है। बड़ा आदमी हो गया है वह ! अब जरा उसकी बेमिसाल करतूतें सुनिये ।

'वही हमारे गणित के प्रोफेसर बनर्जी, वह शानदार व्यक्तित्व, वह योग्यता, वह गौरव—सब कुछ अचानक धूल में मिल गया। आँखों में जाने क्या रोग हो गया उनकी। बरेली के सब डाक्टरों ने जवाब दे दिया तो भागे-भागे लखनऊ आये। मणिमाला साथ थी और शादी उसकी अभी तक हुई न थी। बाप बीमार, पास में पैसा नहीं, तो वह लड़की नौकरी की तलाश करने लगी। टिड्ढा के हाथ में कुछ पोस्टें थीं महिलाओं की, सो वह टिड्ढा के पास आ पहुँची। वह तो इसे पहचानती न थी, पर इसे मौका मिल गया। लड़की के साथ प्रोफेसर के पास जा

पहुँचा और तपाक् से बोला, 'चलिए, मैं इलाज करवाऊँगा आपका।' और जाने किस ऐरे-गैरे, नत्थू-खैरे डाक्टर के पास ले गया और उस नीम-हकीम डाक्टर ने बनर्जी की आँखों का आपरेशन किया और जनाब, आँखें साफ हो गयीं हमेशा के लिए। प्रोफेसर बनर्जी कत्तई अन्धे हो गये और उनकी इस बे-सहारा और बेबस परिस्थिति से टिड्ढा ने लाभ उठाया। मणिमाला को उसने नौकरी दी, अपने आफिस में ही उसे रख लिया और बदले में उसका सब-कुछ ले लिया। एक तरह से उसे अपनी औरत ही बना लिया। इतना ही नहीं, अपनी जो व्याहता स्त्री थी, उसे मार-पीट कर घर से निकाल दिया और ऐश करता रहा और जिन्दगी के सुख लूटता रहा।

'बेईमानी से, मक्कारी से, दूसरों का खून चूस कर उसने पैसे इकट्ठा किया। लखनऊ में दो आलीशान बिल्डिंग्स खड़ी कर लीं। और इस तरह के जाने कितने कर्म-कुकर्म किये उसने इन सालों में।

'और अब सुना है कि वह दिल्ली जा रहा है, किसी बड़े पद पर। स्टेनो बनी मणिमाला उसके साथ जायेगी। बनर्जी को तो, सुनते हैं, उसने खतम करवा दिया। और इस तरह तरक्की और तरक्की, मजे और मजे, दौलत और दौलत—यही उसकी जिन्दगी है आज।

'यह एक पढ़े-लिखे सुशिक्षित सभ्य इनसान की दास्ताँ है भाइयो!

कहिए तो, कहाँ गयी उसकी वह साधुता, वह दयानन्द और गांधी का आदर्श—ब्रह्मचारी ब्राह्मण का व्रत, सत्यनिष्ठा और मनुष्यता!

वह सब ढोंग था उसका। असली स्वरूप यही था—'

कहानी सुनाने वाले श्रीनाथ ने रामनिवास की ओर अँगुली उठा कर कहा, 'अभी जो तुमने कहा था, थोड़ी देर पहिले—चीनी दार्शनिक की उक्ति—मनुष्य स्वभाव से नीच होता है।'

हम सब लोग टिड्ढा की यह कहानी सुन कर जैसे प्रसन्न हुए। रामनिवास उकड़ूँ हो कर बैठ गया था और कुछ कहना ही चाहता था

कि अचानक मेरे अतिथि ने, जो अब तक बिलकुल चुप थे और 'वीकली' देख रहे थे, कोच पर सीधे हो कर श्रीनाथ से सवाल किया, बहुत ही शान्त भाव से, 'आपने जो अभी यह सब सुनाया है, क्या अपनी आँखों देखा बयान कर रहे थे ?'

श्रीनाथ अचकचा कर बोला, 'जी, मैंने आँखों से तो नहीं देखा, मेरा एक साथी बतला रहा था। वह लखनऊ में ही रहता है और मुझसे झूठ हरगिज नहीं बोल सकता।'

अतिथि ने शान्त भाव से कहा, 'मेरा यह मतलब न था कि आप या आपके साथी ने झूठ कहा है। सब सत्य हो सकता है, पर मैं आप लोगों को इसी तरह की एक कहानी सुनाना चाहता हूँ। सुनियेगा आप लोग ?'

'जरूर-जरूर !'—हम सब ने एक साथ कहा।

रामनिवास उत्साह से बोला, 'सुन लो दोस्तों, एक और नीचता की कहानी सुनो। हाय री दुनिया ! हाँ साहब, सुनाइये।'

तब मेरे अतिथि ने यों कहना शुरू किया, 'मैं भी लखनऊ में रहता हूँ और अध्यापक हूँ। पिछले आठ साल से किराये के जिस मकान में रहता हूँ, उसके दूसरे हिस्से में, तीन साल हुए, एक दूसरे युवक सज्जन आ गये हैं। बहुत ही विनम्र और मेहनती। फाइनेन्स में क्लर्क हैं और नाम उनका भी कन्हैलाल शुक्ल है। विवाहित हैं, पर मेरी तरह अकेले ही रहते हैं। पत्नी कहीं गाँव में रह कर उनके पिता की सेवा-टहल करती है। बहुत मिलनसार हैं। दो महीने में मुझसे खूब घुल-मिल गये। साथ-साथ मेस में खाना, साथ-साथ टहलना, साथ-साथ बाजार जाना। हम लोगों की हर चीज में पटरी बैठ गयी थी।

'पिछले साल गर्मियों में, कालेज बंद होने पर मैं बाहर चला गया। लौट कर आया तो देखता हूँ कि शुक्ला के कमरे में कई नये चेहरे चमक रहे हैं। एक वृद्ध-सा व्यक्ति दीखा, ये शायद पिता हैं।

एक सलोनी-सी नवयुवती दीखी, यह शायद पत्नी है शुक्ला की ।

'पर शुक्ला ने दूसरे दिन बताया कि—ये मेरे गुरु जी हैं और यह उनकी एकमात्र कन्या है । दर्द-भरे स्वर में मुझे सुनाने लगा कि–'मेहरोत्रा जी, आप तो चले गये थे, पीछे जून की भयानक तपिश में एक दिन आफिस से कान बाँधे लौट रहा था तो मेडिकल कालेज के पास सड़क पर इन दोनों को खड़ा देखा पेड़ के नीचे, तो मैंने फौरन पहिचान लिया कि 'अरे, ये तो गुरु जी हैं मेरे।' गुरु जी यहाँ इलाज कराने आये थे आँखों का, सो आँखें तो जाती ही रहीं और बिलकुल निःस्व हो गये थे—बिलकुल अवलम्ब-हीन । एक पैसा पास नहीं । घर-जमीन सब पाकिस्तान में छूटा । अब कहाँ जायें और क्या करें ! मुझे तो ऐसा लगा मेहरोत्रा जी, कि अस्पताल से निकल कर वे शायद भीख माँगने लगे थे आते-जाते लोगों से । मेरा हृदय रो उठा, अपने गुरु का यह हाल देख कर । दोनों को यहाँ ले आया फौरन । उन्होंने मुझे विद्या दी है, मनुष्य बनाया है । गुरु में और पिता में कोई फरक होता है मेहरोत्रा जी ?'

'शुक्ला जब तक घर में रहता, उन्हीं अन्धे गुरु की सेवा में लगा रहता । अभी नहला रहा है, अभी भोजन करा रहा है, अभी बिस्तर बिछा रहा है । मैं दूर से देखता रहता—रात को घंटों उनके पैर दबाता रहता । उसकी व्यस्तता का जैसे अन्त न था । मेरे साथ घूमना-फिरना सब छूट गया । लड़की ने घर-गिरिस्ती सँभाल ली थी और इस रतह संसार चलने लगा । यह क्रम महीनों चलता गया, चलता गया कि अचानक एक दिन शाम को जो मैं छत पर चढ़ा तो क्या देखता हूँ कि शुक्ला एक कोने में उदास बैठा है कि जाने रो रहा है चुप-चुप । बड़ा अचरज लगा । क्या बात है ? मैंने पास आ कर कारण पूछा तो जेब से एक कागज निकाल कर बोला उदासी से, 'इसे पढ़िये आप ।'

'चिट्ठी यह उसी लड़की ने लिखी थी । पूरी याद नहीं रही, पर ऐसी थी वह चिट्ठी कि मेरा दिल भर आया पढ़ कर । लड़की ने लिखा

था, 'पापा रोज अकेले में, तुम्हारी अनुपस्थिति में, रोते रहते हैं कि तेरा क्या होगा अब ? कब तक इस तरह जिन्दगी काटेगी ? मेरी मृत्यु के बाद कहाँ रहेगी तू ? दुनिया में तेरा कौन है ? उन्हें रोज रोता देख एक दिन मेरे मुँह से निकल गया कि पापा, तुम क्यों दुखी होते हो ? शुक्ला जी हैं तो, इन्हीं के पास रह जाऊँगी—इन्हीं की सेवा करती रहूँगी।'

पापा साँस खींच कर बोले, 'नहीं जानता, शुक्ला तुझे स्वीकार करेगा या नहीं। मैंने उसके साथ बड़े अन्याय किये हैं। पर लड़का बहुत महान् है। एक बार उससे प्रार्थना कर देखूँ—शायद स्वीकार कर ले। परन्तु यदि उसने स्वीकार न किया ! हे भगवान् !'—मैं अपने पापा को जानती हूँ। वे कहते-कहते क्यों चुप हो गये, मैं जानती हूँ। इस कष्ट से, अपमान की व्यथा से उनका प्राणान्त हो जायेगा; वे इस पीर को सह नहीं सकेंगे। और आज पापा तुमसे अपने अपराधों की क्षमा माँगेंगे और तुम्हारे चरण पकड़ कर मेरे लिये याचना करेंगे। अब और कोई उपाय नहीं है। परिस्थितियों ने मुझे विवश कर दिया है, इसलिए प्रार्थना कर रही हूँ कि दया करके 'हाँ' कह देना। यदि तुमने मुझे स्वीकार न किया तो मेरे पापा का हृदय चूर-चूर हो जायेगा—फिर वे बचेंगे नहीं। मैं कैसे उनकी प्राण-रक्षा करूँ ? बिलकुल हतबुद्धि हो कर, बिलकुल निरुपाय होकर तुम्हारे आगे आँचल पसार कर भीख माँग रही हूँ। शरत् बाबू की अरक्षणीया की तरह तुम्हारे चरणों पर सिर रख कर पुकार रही हूँ कि इतनी करुणा कर दो ! विवाह के लिए नहीं कह रही हूँ। मेरी और कोई कामना नहीं है—जीवन का सब रस सूख गया है—केवल मुँह से 'हाँ' कह दो, और कुछ नहीं चाहिए। पापा मेरे सुखी हो जाएँ—निश्चिन्त हो जाएँ। उनकी मृत्यु के बाद फिर चाहे तुम मुझे अपने घर से निकाल देना—कुछ न कहूँगी। पर आज इतनी दया कर दो देवता, मेरी प्रार्थना सुन लो········'

'चिट्ठी पढ़ कर मेरे मुँह से उस समय एक शब्द न निकला। दूसरे दिन भोर की बेला मैं शुक्ला को बाहर एकान्त में ले गया। पूरी बात कह भी न पाया था कि उसने अपना मन्तव्य मुझे सुना दिया। दिल भर आया मेरा और मैंने शुक्ला को बाँहों में कस लिया।

'मेरे कालेज में एक नौजवान बंगाली प्रोफेसर नये-नये नियुक्त होकर आये थे। अविवाहित और बिनोदी और कलाप्रिय। उन प्रोफेसर से मेरी जाने कैसे खूब घनिष्ठता हो गयी थी। हम लोग वहीं पहुँचे। पूरी कहानी उन्हें कह सुनायी और विनय की और आग्रह किया तो हँसते-हँसते ही तैयार हो गये मणि से शादी करने के लिए।

शुक्ला की चोटी का पसीना एड़ी पर पहुँचा। शादी की तैयारियाँ हुई और आनन-फानन शादी हो गयी मणिमाला की! उस समय शुक्ला की वह ग्रामवासिनी पत्नी आ गयी थी। उसी ने सारा बोझ सँभाला और माँ बन कर उसी ने 'कन्यादान' किया। फिर बिदा की बेला उस मोहमयी नारी ने अपने पास जो कुछ दो-चार आभूषण थे, वे सब मणिमाला को पहिना दिये और पलकों पर आँसू रोके, दीन होकर बोली—'बीबी जी, तुम्हारे भैया-भाभी बहुत गरीब हैं। कुछ कर नहीं सके, कुछ दे नहीं सके अपनी लाड़ली को' तो मणिमाला उससे लिपट कर बिलख-बिलख कर रोयी 'माँ-माँ' पुकार कर। शुक्ला मेरे साथ भीतर पहुँचा और मणि के सिर पर हाथ रख कर रुदन रोक कर बोला कि—यह तेरा अपना घर है, तेरा मायका है मणि, जब इच्छा हो, जिस दिन चाहे अपने गरीब भाई के पास चली आना बहिन!' तब मणिमाला ने मेंहदी-रँगे हाथों से शुक्ला के धूल-भरे चरण पकड़ लिये और 'हाय मेरे भैया' कह कर लोटती रही चरणों पर।

'मणिमाला की डोली चली तो सारा मुहल्ला रो रहा था। मणिमाला पति के घर चली गयी। पत्नी भी गाँव को लौट गयी। और तब से शुक्ला ही अकेला अपने अन्धे गुरु के साथ रह रहा है। उसका

ड्यूटी और भी बढ़ गयी है तब से। पहले होटल में खाता था, अब हाथ से बनाता है। पहले रिक्शे में आफिस जाता था, अब पैदल जाता है। पहले ऊनी कोट पहिनता था, अब स्वेटर से काम चलाता है। उस पर बहुत कर्ज हो गया है। धीरे-धीरे निबटा रहा है और सुबह से शाम तक उसी अन्धे को ले कर व्यस्त रहता है। अब इस समय आफिस से लौटा होगा और अँगीठी सुलगा रहा होगा गुरु जी की चाय के लिए।

'और मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुक्ला ही आपका साथी 'टिड्ढा' है। नहीं, उसकी वह साधुता, ब्राह्मण का ब्रत, सत्यनिष्ठा और आदर्श सब ज्यों-का-त्यों है, लेश मात्र भी नहीं बदला है।'

मेरे अतिथि ने कहानी समाप्त करके कहा, 'परन्तु अभी थोड़ी देर पहले आप नौजवान जो कह रहे थे, मैं उससे सहमत हूँ। चीनी दार्शनिक की उक्ति सही है, 'मनुष्य स्वभाव से नीच होता है।'—कह कर अतिथि चुप हो गये और फिर धोक लगा ली।

हम सब टिड्ढा की यह नयी कहानी सुन कर जैसे सहम गये थे। कोई कुछ न बोला।

●

बेटी

शाम को सुमित्रा कालेज से लौटी, तो घर में हल्का-हल्का शोर-गुल हो रहा था। उसकी तीनों छोटी बहिनें इधर-उधर दौड़ रही थीं। सुमित्रा किताबें लिये शंकित-सी खड़ी थी कि सबसे छोटी ने उसका अंचल पकड़ कर, उन्मुक्त प्रसन्नता से सुनाया, "नयो मुन्नी आयी है। माँ के पास लेटी है।"

सुमित्रा स्तब्ध रह गयी।

दस वर्ष के बाद बाजपेयी के घर पाँचवीं कन्या ने जन्म लिया था।

सुमित्रा स्तब्ध खड़ी थी कि सामने कोठरी से निकलते पिता का शान्त मुख दीखा। हाथ में कागज की पुड़िया थी। सुमित्रा के पास आकर, वही शान्त मुख लिये बोले, "लो, यह काढ़ा बना लो बेटी !"

यह काढ़ा वह हर बहिन के जन्म पर बनाती आयी है। सुमित्रा ने पिता के हाथ से पुड़िया ले ली।

माँ को जर्जरित देह सारे दिन बुखार में तपती रही, और सारे दिन सुमित्रा प्रसूति-गृह में उसको परिचर्या में लगी रही।

रात हुई, तो तीनों छोटी बहिनें खा-पीकर पढ़ते-पढ़ते सो गयो। धीरे-धीरे रात बढ़ती गयी।

ग्यारह बजे जरा झपकी लेने सुमित्रा माँ के पास से उठ आयी।

घण्टा भर बाद पिता उसे जगाने आये, तो खड़े-खड़े काँप रहे थे। सुमित्रा ने घबरा कर पूछा, "क्या हुआ, बाबू जी ?"

बाबू जी न बोले।

घबरायी-घबरायी सुमित्रा माँ के पास दौड़ी गयी।

उसकी माँ का कराहना रुक गया था। उसकी माँ नयन मूँद कर, शान्त सो गयी थी।

ठंडी स्पन्दनहीन छाती से लिपट कर, सुमित्रा करुण-कातर कण्ठ से "मैया, मैया" पुकारती रही।

माँ ने न सुना।........

बारह बजे मरघट से लौटे मित्र, पड़ोसी मुँह सिये अपने-अपने घर चले गये।

बाबू जी वहीं तिदरी में आकर बैठ गये थे मेज के पास, सो वहीं बैठे थे। दोनों हाथ मेज पर फैला लिये थे और सिर रख लिया था मेज पर।

तीनों छोटी बहिनें एक कोने में इकट्ठी बैठी, सुबक रही थीं।

नवजात कन्या को गोद में लिये, सुमित्रा निःशब्द रोती, पिता के पास आ खड़ी होती, फिर रोती-रोती बहिनों के पास जा खड़ी होती। बहिनों से कहती, "रोओ मत, कान्ता, मालती, शन्नो।....चुप हो जा, बहिन।"

बाबू जी के पास आकर वह खड़ी रहती। बाबू जी उसके बोलते न थे, रोते न थे। मेज पर सिर रक्खे बैठे थे। देख कर कलेजा मुँह को आता, ओंठ काँपने लगते, आँखें आँसुओं में डूब जातीं। रोती-रोती फिर लौट जाती।

उसने बच्ची कान्ता को दे दी, धीरज बटोरा और थर-थर होते ओठों से पुकारा, "बाबू जी!"

बाबू जी ने फौरन सिर उठाया। सुमित्रा ने पिता का मुख देखा! जैसे चिता की राख मुख पर लपेट लाये हों। मोह में डूबी, कातर वाणी में बोली, "बाबू जी, मैं सब संभाल लूँगी—सब कर लूँगी, बाबू जी! माँ चली गयी, बाबू जी, पर मैं तो हूँ—मैं तुम्हारी बेटी। मैं तुम्हें दुःख न होने दूँगी, बाबू जी! धीरज रखो, बाबू जी! ऐसे मत होओ, बाबू

जी ! ऐसे मत होओ। मुझ से सहा नहीं जायगा, सहा नहीं जायगा, बाबू जी ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ, बाबू जी !····"

पलक मारते पिता ने उठ कर बेटी को दर्द-भरी छाती से लगा लिया। पिता की दुखती छाती में मुँह छिपा कर, सुमित्रा फूट कर रो उठी।

तीनों छोटी-छोटी बहिनें भी वहीं आ खड़ी हुईं, और जोर-जोर से रोने लगीं, तो पिता ने आँसू बहाते, हाथ हिला कर उन तीनों से कहा, "रोओ मत तुम लोग, रोओ मत। यह है—कलेजे से चिपटी फफकती बेटी को दिखा कर, रोते-रोते बोले, "यह है तुम्हारी बहिन, तुम्हारी माँ की जगह।"····

····करीब दो बरस हुए, बाजपेयी जी के पुराने साथी सुकुलजी का यहीं, इसी शहर को ट्रान्सफर हो गया था। पत्नी उनकी स्वर्गता थी। लड़का था इकलौता सुघर, सलोना और बहुत जहीन। सो वह लड़का यहाँ आकर, यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगा था। एक बार किसी "डिबेट" में सुमित्रा और सन्तोष, दोनों फर्स्ट आये। परिचय-सा हो गया। पीछे सन्तोष की माँ के श्राद्ध के अवसर पर पिता और बहिनों के साथ सुमित्रा उस घर में पहुँची, तो सन्तोष को देख कर चौंकी। वह भी चौंका। हल्की-हल्की खुशी हुई। बोले नहीं आपस में। बोले तो कभी नहीं थे। तो भी खुशी हुई, कि लो, सब अपने ही हैं।

पीछे जाने कब, जाने कैसे सुकुल जी ने सुमित्रा को पसन्द कर लिया।

बाजपेयी जी ने घर आकर, सब के सामने सुना भी दिया।

अब शादी चाहे जब हो जाय।

यूनिवर्सिटी वाली सड़क इस तिराहे पर आकर मिलती थी, वह जो तिराहा सुमित्रा के कालेज के ठीक सामने पड़ता था। वहाँ बरगद का पेड़ था एक, राह से तनिक-सा हट कर। जब-तब सन्तोष उसी बरगद के नीचे साइकिल टेककर खड़ा रहता। सुमित्रा गेट से बाहर आती,

और उसकी आँखें बरबस बरगद की ओर खिंची चली जातीं। दृष्टियाँ मिल जातीं, और मानों सुख मिल जाता, और फिर दोनों अपनी-अपनी राह चले जाते। महीनों यही क्रम चला।

एक चतुर सहेली ने ताड़ लिया, और खोद-खोद कर पूछने लगी, तो बतला दिया सब। सहेली ने प्रसन्न होकर पूछा, "तू उससे बोलती क्यों नहीं पगली ? और कैसा बुद्धू है तेरा बालम, कि यों दूर से देखता है घबराया-सा ?....अच्छा, इतने से सन्तोष हो जाता है तुझे ?"

सुमित्रा ने लजा कर कहा, "हाँ, हो जाता है।"

"क्या हो जाता है ?"

"यही, जो तुमने अभी कह "

"क्या कहा है मैंने ?"

सुमित्रा लजा कर मुस्करा दी धीरे से, और नयन नत कर लिये तो सहेली ने ठोढ़ी पकड़ कर भारी प्रसन्नता से कहा, "नाम नहीं ले सकीं। इतना प्यार। अभी से यह हाल है। मर जाओगी, सुमित्रा !"

सुमित्रा ने पुलकित होकर कहा, लजाते-लजाते, "क्या करूँ, शीला ! मुँह से नहीं निकलता नाम।"....

माँ की मृत्यु के बाद, केवल एक सप्ताह वह शिशु-कन्या जीवित रही। सुमित्रा ने कालेज जाना छोड़ दिया। प्राइवेट इन्टर की तैयारी करने लगी। परन्तु घर में उसे सारे दिन काम से साँस न मिलती। पिता और बहिनों को खिलाते-पिलाते, घर-गिरस्ती सँभालते सारा दिन बीत जाता, और रात के दस-ग्यारह बज जाते, तब कहीं जाकर उसे छुट्टी मिलती। थकित तन-मन लिये, तब वह अपनी किताबें लेकर बैठती, तो नींद घिर-घिर आती।

परन्तु प्रति दिन जब शाम को चार बजते, तो सुमित्रा जैसे चौंक पड़ती, और पल भर के लिए तन और मन काम करना छोड़ देते। अपने कालेज का गेट सामने का बरगद, बरगद के नीचे सायकिल लिये

खड़ा कोई, स्नेह में डूबी किसी की आँखें—सब याद आ जाता, और दुःख लगता हल्का-हल्का, कि कितने दिन हो गये बिना देखे।

उस दिन छोटी बहिन मालती सामने बैठ कर उससे एक कविता का अर्थ पूछने लगी कि "दीदी, किस ने किस के प्राण बाँध दिये ?....प्राण भी बाँधे जा सकते हैं, दीदी ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।

'बाँध दिये तुमने क्यों प्राण प्राणों से ?'

बतलाओ, दीदी, क्या अर्थ हुआ ?"

सुमित्रा की आँखें छलछला आयीं, और दिल भर-भर आया। सुमित्रा बहिन को कविता का अर्थ नहीं बतला सकी।....

दुनिया का दुख-दर्द लिये, ममता लिये, प्यार लिये, मोह लिये, सुमित्रा जी रही थी। रोज तीनों बहिनें स्कूल-कालेज जाने की तैयारी करतीं, तो सुमित्रा छोटी शन्नो को नहला-धुला कर खुद कपड़े पहिनाती, बाल सँवारती उसके, चोटी में रिबन बाँध देती, फिर मालती को बुला कर कहती कि "इधर आओ सामने। देखूँ जरा।....यह क्या है नाखूनों पर ? पेटीकोट नीचे खींचो—और नीचे।" फिर कान्ता की बारी आती। सुमित्रा को उससे कुछ कहना नहीं पड़ता था। सलीके की लड़की थी। पर प्रति दिन जब कान्ता 'मेक-अप' करके कमरे के दरवाजे पर आ खड़ी होती, भीनी सुगन्धि लिये, तो पल भर को सुमित्रा की आँखें रुक जातीं। यह रूप-श्री, यह मधुरिमा, यह चम्पई रंग। तनिक-सा मुस्करा कर, तनिक-सा लजा कर पूछती, "मैं ठीक हूँ न, दीदी ?" तो सुमित्रा स्वीकृति में सिर हिला देती। कान्ता चौखट के पार हो जाती। सुमित्रा को लगता, जैसे घर में कहीं कोई प्रकाश बुझ गया। और तब जाने-अनजाने अपने ऊपर अपनी दृष्टि पड़ती। यह मैली धोती, ये बिन सँवारे बाल, ये आटे की और शन्नो को लगाये तेल की मिली-जुली गन्ध लिये हाथ, ये गन्दे तलवों वाले पैर। और वह भीतर जाकर शीशे के सामने खड़ी हो जाती। जिस शीशे में अभी घड़ी भर पहले कान्ता अपनी छवि

देख कर गयी थी, उसी शोशे में सुमित्रा अपना प्रतिबिम्ब देखती। ये आँखों के चारों ओर काले-काले धब्बे पड़ गये है न! सुमित्रा हाथों से मसल कर देखती। ओंठों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं क्या? सुमित्रा ओंठों पर जीभ फिरा कर देखती। यह गले की हँसली ऊपर उभर आयो है क्या? सुमित्रा अँगुलियों से उस हड्डो को छूकर देखती। अरे, यह ब्लाउज! अरे, यह धोती! और तब अचानक रसोई-घर में अँगीठी पर जलती तरकारी की गन्ध आती, और वह भागी जाती। रोज-रोज हर रोज।

रविवार की छुट्टी थी। कान्ता के कालेज में ड्रामा होने वाला था। मालती को साथ लेकर कान्ता वहीं गयी थी। बाजपेयी जी खाना खाकर वहीं रसोई घर में बैठे थे, और सुमित्रा अँगीठी के कोयले बुझा रही रही थी कि अचानक ही पिता ने धीरे से कहा, "बेटी, मैं तुमसे एक बात कहना चाहता था।"

सुमित्रा पिता का मुँह देखने लगी। सिर डाले बोले, "यह तुम्हारी कान्ता है न, यह अब बहुत सयानी लगने लगी है।"

सुमित्रा ने तनिक हँस कर कहा, "हाँ, बाबूजी, मेरे सब कपड़े उसको छोटे पड़ते हैं। और सुन्दर कितनी लगने लगी है, बाबूजी! जब पढ़ने जाती है रोज—"

पिता ने बात काट कर कहा, "अब जल्दी ही इसकी शादी कर देनी चाहिए।"

"ओ दीदी!" जीने के ऊपर से चीख आयी।

और सुमित्रा द्रुतगति से भागी।

बन्दर आ गया था शन्नो के पास, और वह रो रही थी।

सुमित्रा ने हँस कर कहा, "चल, किताबें उठा ले। नीचे बैठ कर लिख।"

बहिन को किताबें-कापियाँ बटोरते, सुमित्रा ने मन-ही-मन कहा, "कान्ता सयानी हो गयी है। उसकी शादी हो जानी चाहिए। शायद दोनों बहिनों की शादी साथ-ही-साथ कर दें बाबूजी। परन्तु फिर इस घर को कौन सँभालेगा ? मालती बच्ची है। और यह शन्नो है मेरी, और मेरे बाबूजी हैं। कौन इन तीनों की खबर-सुधि लेगा ?" बुद्धि हौले से बोली, "वे लोग हमारे इसी घर में आ जायँ न ! ये ऊपर के दोनों कमरे तो खाली पड़े हैं। बाप-बेटे यहीं आ जायँ। मैं उनसे कह दूँगी कि "मैं अपने बाबूजी को अकेला कैसे छोड़ दूँ ? और कान्ता भी सुसराल चली गयी है। मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ—इतनी-सी मेरी प्रार्थना है। मानियेगा नहीं ?" हँस कर कहेंगे, "लो, मान तो ली तुम्हारी प्रार्थना। अब जरा अपने बाबूजी से और पूछ लूँ।" और अपने पिता जी से जाकर कहेंगे, "दादा, यह कह रही है कि—" पिता उनके उस कोने वाले कमरे में बैठे हैं। ये लजा-लजा कर कह रहे हैं, "यह कहती है—" पिता सुन कर हँसने लगेंगे। कहेंगे, 'देखो भई, इस घर की रानी है सुमित्रा बेटी। जैसा चाहे इन्तजाम करे। हम बीच में बोलने वाले कौन ?""ठीक तो कहती है—सब लोग साथ-साथ ही रहेंगे। बड़ा आनन्द रहेगा।"

बहिन को साथ लेकर जीने से नीचे उतरती सुमित्रा के शर्मीले मन ने हौले से कहा उसके कान में, "तब तो तुम इसी जीने से घूँघट काढ़ कर रोज ऊपर जाया करोगी बहू होकर।" बहू ! सुमित्रा के चेहरे पर लाज की लालिमा छा गयी।

यहाँ आकर देखा, तो पिता जहाँ के तहाँ बैठे थे।

सुमित्रा फिर अपनी जगह आ गयी, तो पिता ने कहा, "एक खुशी की खबर सुनो, बेटी। सन्तोष डिप्टी कलेक्टरी के चुनाव में आ गया। भगवान् उसकी बड़ी उमर करें। बड़ा होनहार सपूत है। परसों सुकुल

जी के यहाँ दावत है। तुम सब बहिनों को बुलाया है। तुम्हें ही करना-धरना है सब।''....

ये लोग वहाँ पहुँचे तो सुकुल जी आँगन में खड़े अपनी बुढ़िया मिसरानी को समझा रहे थे कि क्या-क्या बनाना है। तीनों छोटी बहिनों ने हाथ जोड़ ताऊजी से नमस्ते की। केवल सुमित्रा ही लजा कर थमले की ओट खड़ी रही। पर सुकुल जी ने उसी को लक्ष्य करके कहा, "तुम आ गयीं बेटी! लो, अब सँभालो सब! मैं चला।"

सुमित्रा मिसरानी को साथ लेकर काम में डूबी थी कि अचानक सन्तोष जाने क्या लेने, जाने क्या कहने भीतर आ खड़ा हुआ। एक क्षण के लिए दोनों की दृष्टियाँ मिलीं। सुमित्रा ने लजाकर तत्काल मुख फेर लिया, और सन्तोष बिना कुछ बोले लौट आया।

घड़ी भर बाद कान्ता ने भीतर आकर कहा, "दीदी, देखना, यहाँ कहीं छालियाँ रक्खी हैं?"

सुमित्रा ने पुड़िया उठा कर दे दी।

घड़ी भर बाद फिर कान्ता ने आकर पूछा, "दीदी, पापड़ हैं न?"

सुमित्रा ने देख कर कहा, "हाँ, हैं पापड़।"

कान्ता फिर आ खड़ी हुई, और कहने लगी—"रायते में मिर्च मत डालना, दीदी! और सोंठ में किशमिश पड़ेगी और काला नमक।"

सुमित्रा ने तनिक हँस कर कहा, "अब ज्यादा मत समझाओ तुम। मुझे आता है सोंठ बनाना।"

कान्ता ने संकुचित भाव से कहा, "उन्होंने कहा था। सो मैंने तुमसे आकर कह दिया।"

"किसने कहा था?"

"सन्तोष जी ने।"

....मिसरानी दाल पीस रही थी। दही छानना था। शन्नो सामने

दीख गयी तो सुमित्रा ने उसे पुकार कर कहा, "कान्ता कहाँ है ? बुला तो उसे। यह दही छनवा ले।"

शन्नो ने फौरन लौट आकर कहा, "वह तो ऊपर बैठी सन्तोष भैया से बातें कर रही है।"

....और सन्तोष ने कान्ता के खिले चेहरे पर नजर जमाये, हँसकर पूछा, "हिस्ट्री ले ली, अच्छा किया। पर यह पालिटिक्स लेने की सलाह तुम्हें किसने दी थी ?"

कान्ता मुस्करा कर बोली, "ले लिया यों ही। क्यों, पालिटिक्स क्या बुरा है ?"

"बुरा !" सन्तोष ने हँसकर कहा, "बुरा सबजेक्ट दुनिया में कोई नहीं है। पर तुम्हें तो संस्कृत लेनी थी। साहित्य पढ़तीं। बाणभट्ट की कादम्बरी कालिदास की शकुन्तला—यह सब पढ़तीं।"

"अब बदल दूँ ?"

"बदल दो न !"

एक ततैया जाने कहाँ से आकर कान्ता के बालों पर बैठ गयी थी। सन्तोष ने आगे झुककर, उसे हाथ से उड़ा दिया।

कान्ता ने सम्भ्रम से पूछा, "क्या हुआ ? क्या था ?"

सन्तोष ने उसी तरह हँसकर कहा, "कुछ नहीं। मधुकर था कोई। कमल पर बैठना चाहता था।"

कान्ता लजा कर भाग गयी।....

....सन्तोष के संगी-साथी खाने आये, तो एक बार वह फिर भीतर आया। फिर सुमित्रा से उसकी नजरें मिलीं। फिर चुपचाप लौटा जा रहा था कि कान्ता दीख गयी, तो पुकार कर बोला, "इधर आना, कान्ता जी !"

"जी, क्या चाहिए ?"

"जी, रायता।"

कान्ता रायते का बरतन उठा लायी दीदी के पास से, और बोली, "यह लीजिये रायता।"

"जी, ले चलिये जरा।"

कान्ता ने बरतन वहीं आँगन में रख दिया, और सिर तिरछा करके, बड़ी शाइस्तगी से कहा, "माफ कीजिये, श्रीमान्‌जी ! आप इसे खुद ले जा सकते हैं।"

सन्तोष ठहाका मार कर हँसा। फिर वह रायता उठा ले गया।····

सबको खिलाते-पिलाते काफी रात हो गयी। तो मुकुल जी ने भीतर आकर कहा, "बेटी, तुमने खा लिया न ?"

सुमित्रा हौले से बोली, "खा लूँगी।"

"खा लो, बेटी, अब तुम खा लो। बड़ी मेहनत की है आज तुमने। शाबाश बेटी ! मैं बहुत खुश हूँ तुमसे। बेटी, एक दिन तुम्हीं को तो यह घर सँभालना है। देख तो रही हो, कैसी बदइन्तजामी है। तुम न होतीं आज, तो जाने क्या होता ? खाओ, बेटी, खाना खाओ।"

सुमित्रा ने शन्नो को बुलाया, मालती को पुकारा। वे दोनों खा चुकी थीं। तब उसने कान्ता को बुलवाया। शन्नो ने आकर खबर दी कि वह तो सन्तोष भैया के साथ कैरम खेल रही है ऊपर बैठी।

इस बार सुमित्रा को बुरा लगा। बहिन से दुखी होकर बोली, "जा, बुला ला उसे। जरा भी शरम नहीं कान्ता को।"

····रात को दस बजे ये लोग उस घर से निकले, तो फिर तीनों बहिनों ने ताऊजी से हाथ जोड़कर नमस्ते की। केवल सुमित्रा ही हाथ नहीं जोड़ सकी। दरवाजे से बाहर आये, तो सन्तोष खड़ा था। सुमित्रा कतरा कर उस किनारे से निकल गयी, धड़कता कलेजा लिये। उसके पीछे कान्ता भी चली जा रही थी कि सन्तोष ने पुकार कर कहा, "नमस्ते रह गयी, कान्ता जी ! लिये जाइये साथ।"

कान्ता ने वहीं से ज़वाब दिया—"रख लीजिये अपनी नमस्ते ! हमें जरूरत नहीं।"

सुमित्रा ने उस समय कुछ न कहा। घर आकर उसने कान्ता को डाँटा। पर कान्ता हँसती ही रही।....

दूसरे दिन सुमित्रा ने पिता से लजाते-लजाते कहा, "बाबूजी, इस साल मैं भी इन्टर का फार्म भरूँगी।"

सुनकर बाबूजी खुश हुए।

फिर उसने कान्ता से किताबें माँगीं इन्टर की। फिर वह रात को सब किताबें लेकर बैठी, और बड़ी रात तक पढ़ती रही, और खुश-खुश सोयी कि इसी तरह मेहनत करूँगी रोज, कि छोटी बहिन बी० ए० में पहुँच गयी और कुछ लोग डिप्टी कलेक्टर होने जा रहे हैं, और वह निपट गँवार रह गयी, कि उसे कितनी लज्जा लगेगी कुछ लोगों के सामने !....

दिन कितनी शीघ्रता से बीत जाते हैं—जैसे हवा का झोंका चला जाय, जैसे नदी की लहर चली जाय।

देखते-देखते कान्ता सत्तरह-अठारह साल की हो गयी और सुमित्रा हो गयी बीस-इक्कीस की। पिछले जाड़ों में ही सुमित्रा की शादी कर देना चाहते थे बाजपेयी जी, पर सुबिधा न हो सकी। तब से बराबर जुगाड़ कर रहे थे। दूसरे-तीसरे कुछ-न-कुछ खरीद कर लाते, और सुमित्रा से कहते कि "यह लाकेट का डिजाइन अच्छा है न, बेटी ?" "ये इयरिंग तुम्हें पसन्द आये ?" "इस अँगूठी की बनावट देखो।" "यह साड़ी अच्छी लगी तुम्हें ?" "लो ये ब्लाउजपीस हैं।" लजाती-सकुचाती सुमित्रा सब चीजें सँभाल कर रखती जाती। मन में जाने कैसा लगता। खुशी-सी लगती कभी, जी घबराता-सा कभी।

सहसा एक दिन शीला आ खड़ी हुई उसके आँगन में। पिछले साल शीला का व्याह हो गया था।

पुरानी स्मृतियों को लेकर दोनों ने सुख-दुःख मनाया कि हाय, कहाँ चले गये वे दिन !

फिर शीला ने अपने इस विवाहित जीवन की, अपने स्वामी की मधुर, नशीली बातें सुनायीं। फिर खुश-खुश बोली, "जानती हो, मुझे या कह कर पुकारते हैं ?"

"क्या कहते हैं ?"—सुमित्रा ने विह्वल होकर पूछा।

"रूप !" शीला ने खुशी से भरकर सुनाया, "मुझे बस 'रूप' सम्बोधन से पुकारते हैं।....अब तू अपने हाल-चाल तो सुना ! कैसी गुजर रही है ? इधर कब से भेंट नहीं हुई ? चिट्ठी-विट्ठी लिखता है वह कभी ? तू लिखती है कभी अपने मन का हाल ?"

सुमित्रा ने लजाकर बतलाया कि, नहीं, चिट्ठी तो कभी कोई नहीं लिखता। भेंट भी बहुत दिनों से नहीं हुई है। मन के रेडियो चलते हैं, सब सुनने को मिल जाता है। और सुनाया कि डिप्टी कलेक्टर होने वाले हैं। ट्रेनिंग ले रहे हैं।

"अरे, हाँ-हाँ, सुना तो था। अजी, हमारे श्रीमान् जी के तो दोस्त हैं तुम्हारे हजरत। वही सुना रहे थे।....एजी ए, डिप्टी की घर वाली, बड़ी आदमिन होकर हमें भूल तो न जाओगी, श्रीमती जी ?"

सुमित्रा ने रुँधे-रुधे गले से कहा, "तुम्हें यकीन होता है, शीला कि मैं तुम्हें भूल जाऊँगी—कभी बदल सकूँगी मैं ?"

शीला स्नेह से कातर होकर बोली, "मुझे कभी नहीं भूल पायेगी तू, जानती हूँ। पर, सुमित्रा, अपने को तुझे जरूर बदलना पड़ेगा। देख, स्वामी तेरा होगा आफीसर। उसे रसोईदारिन, महराजिन नहीं चाहिए। उसे चाहिए जीवन-सहचरी, जो कदम-ब-कदम चल सके उसके साथ, साथ दे, हर चीज में शिरकत करे। तब जिन्दगी तेरी दूसरी होगी। अभी से जरा अपने को सँभालो, सुमित्रा !"

सुमित्रा का कलेजा धक-धक करने लगा। वह त्रासाकुल आँखों से सहेली का मुँह देखती रही।

शीला ने उसके मुरझाये, अनलंकृत चेहरे पर नजर जमा कर, ममता से कहा, "तूने अपना यह क्या हाल कर रखा है? कैसा तेरा चाँद-सा मुखड़ा था, कैसा कुन्दन जैसा रंग था। जरा शीशे में अपनी शकल देख। साढ़े-तीन बज रहे हैं। मैं कहती हूँ, आज का आदमी तो औरत की टीम-टाम पर मरता है, रूप पर जान निछावर करता है। जो उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा कर दे, उस नारी पर वह लट्टू हो जायगा। नारी के गुण, नारी की महत्ता, उसका मातृत्व, उसकी मोह-ममता त्याग-बलिदान—यह सब इन सौन्दर्य-प्रेमियों के आगे कुछ नहीं के बराबर है। सुन रही है? तूने अपना सत्यानाश कर लिया है। अब तो सँभल जा, भाग्यवान्! एक नयी चीज आयी है बाजार में। नाम भूल रही हूँ उसका। मैं ला दूँगी तुझे। उससे चेहरे का रंग सात दिन में बदल जाता है, दुगुनी रौनक आ जाती है। रात को सोते समय लगाना।"

तभी बाबूजी आ गये। शीला उनसे नमस्ते करके उठने लगी, तो सुमित्रा ने उसे पकड़ कर कहा, "जरा बैठो। मैं अभी आयी।"

और बक्स में से पाँच रुपये का एक नोट लाकर सहेली को देते हुए कहा सकुचा कर, "ले आना वह चीज।"....

जाड़ा पड़ने लगा था, और आग प्यारी लगने लगी थी। शाम को सुमित्रा ने अपने बाबूजी को आलुओं के पराँवठे खिलाये। खाकर तृप्त हो गये। फिर वहीं अँगीठी के पास बैठे हाथ सेंकते रहे, और सुमित्रा को अपने बचपन की बातें सुनाते रहे। अपने लिए पराँवठे सेंकती, सुमित्रा बाबूजी के बचपन की बातें सुन रही थी खुश-खुश।

बाबूजी बोले, "सुकुल के साथ मेरी तभी की जान-पहिचान है, बेटो!" रुक गये। फिर कहने लगे, "बेटी, तीन-चार दिन हुए मुझसे झड़प हो गयी है, सुकुल की।"

सुमित्रा ने चौंक कर पिता की ओर देखा।

बोले, "ब्याह-शादी क्या गुड़ियों का खेल है कि यह गुड्डा बदल दिया कि वह गुड़िया बदल दी ?"

सुमित्रा के कलेजे में धक् से हुआ।

बाबूजी ने सुनाया, "सुकुल कहने लगे कि लड़का और लड़की में दस साल का अन्तर होना चाहिए। दस न सही, पाँच-छः ही सही। कहने लगे कि सन्तोष और कान्ता की जोड़ी बहुत अच्छी रहेगी।"

एक क्षण के लिए जैसे सुमित्रा रसातल को चली गयी फिर जैसे ऊपर उड़ती गयी आकाश की ओर, उड़ती गयी-उड़ती गयी।

और नीचे धरातल पर बैठे पिता उसे सुनाते गये, "वह उस दिन कान्ता को देख लिया था न। बस, फिसल गये। बोलो भाई, मेरी कुन्दन जैसी सुमित्रा में तुमने क्या कमी देखी ? रिश्ता तो बड़ी लड़की से तय हुआ था न ? आदमी की जुबान एक होती है। जो अपनी बात से पलट जाय, मैं उसे आदमी नहीं मानता। बेटी, मैंने सुकुल को ऐसा आड़े हाथों लिया, ऐसा फटकारा कि सिर डाल गये बच्चू !"

उस रात सुमित्रा ने न खाना खाया, न वह सो सकी घड़ी भर भी। मन उसका उड़ता फिरा, देह उसकी अवसन्न रही।....

भोर की बेला वह उस कमरे में बहिनों को जगाने गयी तो अनायास ही कान्ता के मुख पर उसकी नजर चली गयी। कितनी सलोनी छबि है !

बालों की एक लट शुभ्र, स्वच्छ आनन पर झुक आयी है। रस-भरे नयनों पर बड़ी-बड़ी पलकें छायी हैं। मधुर ओष्ठ-संपुट बन्द हैं। धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास आ-जा रहा है, उससे नवयौवन तरंगित होता है। कैसे सो गयी है—कविता की तरह। जैसे कोई सुरबाला सो गयी हो सजीले सपने लेकर।

ममता से भरी सुमित्रा का दिल भर-भर आया अपनी कान्ता के लिए। रात को शायद पढ़ते-पढ़ते ही सो गयी है। मोह में डूबी सुमित्रा उसकी बिखरी किताबों को धीरे-धीरे उठा कर करीने से रखने लगी, तो अचानक ही किसी किताब के किनारे चमकती एक छोटी-सी चिट पर उसकी नजर पड़ी।

कैसी चिट है? सुमित्रा ने धीरे से उस चिट को खींचा और आँखों के नजदीक ले गयी। पेंसिल से यों लिखा था उस चिट पर :—

"पाषाणी, कल जरूर मिलना। वहीं, बट तले।"

सुमित्रा के कलेजे में सनाका हो गया। किसने लिखा है यह? अन-मने भाव से चिट को लौट-पौट करके देखने लगी तो दूसरा ओर भी कुछ लिखा दीखा। उधर यों लिखा था :—

"पत्थर के देवता, कल मैं घण्टा भर तुम्हारा इन्तजार करती रही। पर तुम न आये, निर्दयी!"

सुमित्रा का दिल घबराने लगा। हाय, कान्ता ने यह क्या किया?

और वह अवश हाथों से उसी किताब के पन्ने उलट-पलट कर देखने लगी, दिल में घबराहट लिये, तो एक चिट और निकली। इस चिट पर यह लिखा था :—

"मैं अपने पिता से सब कह दूँगा। मैं क्या सुमित्रा के साथ बँधा हुआ हूँ? तुम घबराना मत।"

सब स्पष्ट हो गया।....

....नित्य की तरह सुमित्रा ने सब काम-धाम किये।

सदा की तरह नौ बजे कान्ता ने रसोईघर में आकर कहा, "दीदी, मैं बना लूँ रोटी?"

और सुमित्रा ने सदा की तरह कह दिया, "तू तैयारी कर कालेज की।"

फिर मालती से नाराज हुई सुमित्रा। गन्दी धोती पहिने मालती स्कूल चली जा रही थी। फिर शन्नो की शलवार पर लोहा किया। फिर बाबूजी को परोस कर खिलाया।

फिर काम में लगे-लगे दिन डूबा। फिर शाम हुई। फिर सबने खाया-पिया।

रात को दस बजे, जब तीनों छोटी बहिनें सो गयी थीं, और गली की राह रुक गयी थी, और सन्नाटा घिर आया था चारों ओर से, तब भूख-प्यास भूली, चकनाचूर सुमित्रा पिता की शय्या के पाँयते आ खड़ी हुई। उसकी कृश काया थर-थर काँप रही थी। काँपते कण्ठ से, काँपते ओठों से बल लगा कर पुकारा, "बाबूजी!"

"हाँ, बेटी!" पिता ने फौरन आँखें खोल दीं, और उठ कर बैठ गये।

सुमित्रा से और खड़ा नहीं रहा गया। वह वहीं पिता के चरणों में बैठ गयी, और काँपती वाणी में पूछने लगी, "बाबूजी, सुकुल जी से फिर बात हुई आपकी?"

पिता क्षण भर मौन रहे, फिर धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "बेटी, महाराज दशरथ ने कहा था, 'मेरे राम-भरत दोऊ आँखी।' और मेरी दोनों आँखें तुम हो—तुम और कान्ता। अवस्था में तुम बड़ी हो, और कान्ता देखने में सयानी लगती है। वे लोग कान्ता के लिए जिद पकड़े हैं। और, बेटी, कान्ता की ओर से मुझे हर दम, हर घड़ी चिन्ता लगी रहती है। कोई जरा-सी भी बात हो गयी, तो मरन हो जायेगा मेरा। तुम तो मेरी तपस्विनी बेटी हो—जैसे कांचन होता है तपाया हुआ।.... कोई बात नहीं है। इच्छा है, तो कान्ता को ही बना लें अपनी पुत्र-बधू। पर बेटी, इस तरह तुम्हारे साथ अन्याय होगा। यह तुम्हारा अपमान होगा। और यह मेरी बरदाश्त के बाहर है। मैं अपनी आँखों से तेरा अपमान नहीं देख सकता, बेटी!"

तब सुमित्रा ने कातर स्वर से कहा, "अपमान काहे का? सभी तो पढ़ी-लिखी, सुन्दर लड़की चाहते हैं। सो मेरे पास कुछ नहीं है—कुछ भी नहीं है। अपमान तो उनका होगा। मैं क्या अब उनके योग्य रही हूँ?" सुमित्रा का कंठ अवरुद्ध होने लगा। उसी रुँधे गले से कहने लगी कातर होकर, "और, बाबूजी, मेरे बिना ये दोनों छोटी बहिनें कैसे रह पायेंगी? मेरी मालती अभी बिलकुल बच्ची है। और मेरी शन्नो को कौन देखेगा? कौन उसे सोते से जगा कर खिलायेगा? कौन रात को बार-बार उसकी रजाई ठीक करेगा? कौन उसके कपड़े धोयेगा? कौन उसके बाल सँवारेगा? कौन सजायेगा उसे? और तुम्हें कौन देखेगा? रोज भूखे रहोगे—भूखे ही सो जाओगे।"

सुमित्रा की आँखों से आँसू टपकने लगे। आँसू बहाती बोली, "तुम तीनों को छोड़ कर मैं कहाँ जाऊँ? कैसे जा पाऊँगी? तुम मुझे इस घर से क्यों अलग कर देना चाहते हो, बाबूजी? मुझसे कौन अपराध हो गया है, बाबूजी?"

पिता ने काँप कर कहा, "सुमित्रा, तुझे आज क्या हो गया है, बेटी? तू ऐसी बातें न कह, लाड़ली! तेरे सहारे ही ये तीनों बड़ी हुई, तेरे सहारे ही मैं जिन्दा हूँ। अपराध तो मैंने किये हैं बेटी, कि तेरे कोमल कन्धों पर गृहस्थी का सारा बोझ रख दिया, पीस दिया तुझे। तेरा आज यह हाल हो गया है, कि हड्डियाँ निकल आयी हैं। तू आज चाहे कुछ कह, मैं तेरे मन का दुःख-दर्द जानता हूँ, सुमित्रा! मैं तेरा पिता हूँ। आज अगर तेरी माँ जिन्दा होती—" फिर आँसुओं के बीच बल लगा कर बोले, "नहीं, बेटी, मैं यों नहीं मानूँगा। एक बार उसके पास जाऊँगा—एक बार सारी शक्ति लगा कर सन्तोष को समझाऊँगा। देखूँगा कि वह कैसे नहीं मानता।"

सुमित्रा को जैसे किसी ने गरम सलाख से छू दिया हो। चौंक कर उसने डबडबाई आँखों से पिता की ओर देखा। फिर हृदय की सारी

करुणा, सारी व्यथा-पीड़ा को वाणी में भर कर बोली, "तुम उनके पास मत जाना, बाबूजी, हरगिज मत जाना। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, बाबूजी !" सुमित्रा ने पिता की ओर हाथ जोड़े। फिर आँखों से आँसू गिराते कहा, "हाथ जोड़ती हूँ, बाबूजी, मेरी लाज रहने दो। तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध, बाबूजी, अब कभी उनके आगे मेरा नाम न लेना। तुम कान्ता के लिए अपनी स्वीकृति दे आओ बाबूजी ! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ, बाबूजा !"....

और सुमित्रा वहीं पिता के चरणों में अपना सिर रखने लगी, तो पिता ने उसे पकड़ लिया फौरन, और अपने कलेजे से लगा लिया।

●

'निर्गुण' की अन्य रचनायें

१. छाया	कहानी-संग्रह
२. पूर्ति	,, ,,
३. बहूजी	,, ,,
४. टीला	,, ,,
५. कच्चा धागा	,, ,,
६. दो किनारे	,,
७. खोज	,, ,,
८. प्यार के भूखे	,, ,,
९. टूटे सपने	,, ,,
१०. जिन्दगी	,, ,,
११. दायरे	,, ,,
१२. लाजवन्ती	,, ,,
१३. नोबिली	,, ,, (रूसी भाषा में)
१४. चाँद बोला	लघु उपन्यास
१५. खोया-खोया मन	,, ,,

अन्य कृतियाँ

• रेखायें और रेखायें

संपादक : सुधाकर पाण्डेय तथा

डॉ० विश्वनाथप्रसाद तिवारी

विभिन्न साहित्यकारों द्वारा २०

मर्मस्पर्शी रेखाचित्रों का

संकलन तथा विस्तृत भूमिका ३.००

• भोर का आवाहन

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

१५ व्यक्ति व्यंजक एवं ललित

निबन्धों का संकलन

प्रस्तुतकर्ता : डॉ० शिवप्रसाद सिंह २.५०

• प्रतिनिधि कहानियाँ

सम्पादक : डॉ० बच्चन सिंह

१२ कहानीकार, १२ कहानियाँ

विचारपूर्ण भूमिका ३.००

• पद्य भारती

सम्पादक : परमानन्द गुप्त

१८ आधुनिक और ६ प्राचीन

कवि-कृतियों का संकलन,

परिचय, समीक्षा १.५०

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी